❀ ॐ ॐ जय श्रीकृष्ण ❀

ब्रह्मीभूत श्री १०८

श्री स्वामी परमानन्द जी महाराज

का

जीवन चरित्र

तथा

उनके उपदेश व पत्र व्यवहार

लेखक व प्रकाशक:—

भूमानन्द ब्रह्मचारी

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रामपुरा, रेवाड़ी।

प्रथम संस्करण] सन् १९७० [मूल्य १ रु० २५ पैसे

आश्रम के उद्देश्य

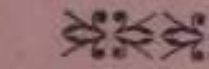

१. श्रीभगवान् की भक्ति का प्रचार करना।

२. गोरक्षा और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना।

३. जंगलों में वृक्ष लगवाना और उसके बीच में जलाशय बनवाना।

४. शिक्षा का प्रचार करना जिसमें मनुष्य मात्र विद्यालाभ कर सकें और प्राचीन प्रथा को फिर प्रचलित करना।

५. बीमारियों के अवसर पर दवाई बांटना।

६. आस पास के ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति और प्रेम बढ़ाना।

७. सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जागृत करना।

८. राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

—:o:—

के उद्देश्य

चार करना।

ाचर भूमि छुड़वाना।

र उसके बीच में जलाश

समें मनुष्य मात्र विद्या

प्रचलित करना।

वाई बांटना।

पर के झगड़े और वैमन

और धर्म का भाव

हित चिन्तन करना।

—:o:—

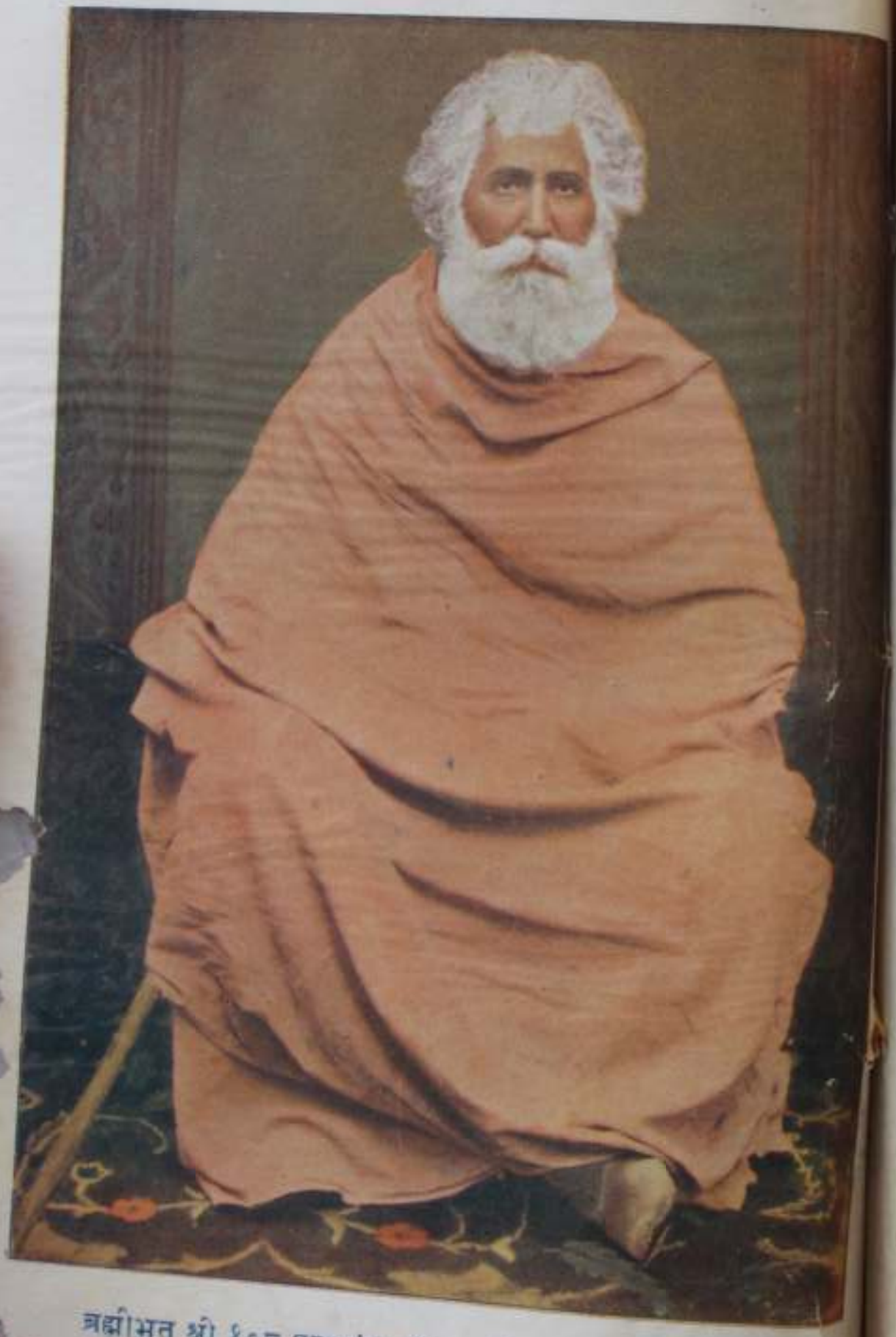

ब्रह्मीभूत श्री १०८ परमहंस श्री स्वामी परमानन्द जी

ब्रह्मीभूत श्री १०८ श्री स्वामी परमानन्द जी महाराज

जगद्गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च।
योगीन्द्राणां च योगीन्द्रः गुरुणां गुरवे नमः॥

अनेक युग बीत गये, अनेक अवतारों का अवतरण हुआ। नाना ऋषि, मुनी, सिद्ध, तपस्वी और महात्माओं को भगवान् समयानुसार संसार के कल्याणार्थ पृथ्वी तल पर भेजते रहते हैं। उनकी प्रतिज्ञा है कि जब जिस बात की आवश्यकता होती है उसकी पूर्ति के लिये वे अवश्य ही किसी न किसी रूप में अवतरित होते रहते हैं। कभी नरसिंह के रूप में आते हैं, कभी वराह के रूप, कभी राम के और कभी कृष्ण के। इस युग में जबकि सर्वत्र अशान्ति का साम्राज्य छाया हुआ था वे शान्ति और परम आनन्द का साम्राज्य स्थापित करने के लिये परमानन्द के रूप में अवतरित हुवे।

यह महापुरुष वास्तव में एक उच्च कोटि के सन्त थे। इनमें योग और ज्ञान पराकाष्ट को पहुँच चुके थे। उनकी आत्मा एक महान आत्मा थी जो मानुषी प्रकृति के स्वभाविक सद्गुणों में दृढ़ रू से स्थिर होते हुवे उनकी सीमा को पार कर चुकी थी और इसलिये संसार तथा उसके आनन्द को पूर्ण वैराग्य की दृष्टि से देखती थी और अपने स्वाभाविक शान्त अवस्था के रहस्य को पूर्ण रूप से

जानती थी। वे सदा ब्रह्म ज्ञान और ब्रह्म दर्शन के परमानन्द में निमग्न रहते थे। उनके हृदय में मनुष्य मात्र की भलाई और जीव मात्र से प्रेम था। उनका मन एक बच्चे की भांति प्रसन्न रहता था। उनके दर्शनों से उल्लास प्राप्त होता था और उनका क्षण मात्र का ही सत्संग यह उत्कंट जिज्ञासा जाग्रत कर देता था कि मनुष्य यह जानने का यत्न करे कि उसका वास्तविक स्वरूप क्या है और ईश्वर क्या है ? उनका उपदेश आत्मा के आवरण को हटा कर उसका मल धोकर उसको निर्मल और उज्ज्वल कर देता था और कुविचार और मलिन इच्छायें ऐसे भागती थी जैसे सूर्य के सान्निध्य से अन्धकार। उनकी दृष्टि और उनके आशीर्वाद में एक आकर्षण था, एक जादू का असर था। उनकी आत्मा एक ईश्वरीय प्रसाद से छलका करती थी। मनुष्य मात्र का कल्याण और उद्धार करने के लिये तथा मायाग्रस्त सांसारिक आत्माओं का अपना दुर्लभ सत्संगामृत पान कराते हुवे, सत्य और ईश्वर के सद् ज्ञान का उपदेश देते हुवे उन्होंने जीन्द, संगरूर, पालम, नरेला, रामपुरा, गढ़ी, दिल्ली, शिमला आदि कई स्थानों में आसन लगाया और सर्व साधारण को धर्म, ज्ञान, भक्ति, सदाचार, श्रमदान, गो रक्षा, वृक्षारोपण, स्त्री शिक्षा, अछूतोद्धार, नेत्रदान यज्ञ व गायत्री मन्त्र का उपदेश दिया।

वे सम्वत् १९५५ में अम्बाला में वजीदपुर और दीनारपुर ग्राम में ठहरे थे। उस समय वे केवल दुग्धपान ही किया करते थे। वजीदपुर में एक मौलवी उनके सत्संग में आया करता था। मौलवी सहाब से किसी ने पूछा यह महात्मा कैसे हैं ? मौलवी सहाब ने उत्तर

दिया कि यह तो औलिया (महापुरुष) हैं। सं० ५७ में जगाधरी में लठमारों की धर्मशाला में ठहरे। वहां रतनलाल हलवाई श्री महाराज जी की सेवा किया करता था श्री महाराज जो ने उसको हनुमान जी के चरित्र का उपदेश दिया। सं० ६४ में मवाने ग्राम का धन्ना वैश्य श्री महाराज जी को नरेला ले आया वहां श्री महाराज जी एक तालाब पर ठहरे। रघुनाथ नामक एक ब्राह्मण का लड़का जो लाहौर संस्कृत कालिज में पढ़ता था ईसाई होने वाला था। श्री महाराज जी के सत्संग में आकर वह इनकी सेवा में संलग्न हो गया। वहां से श्री महाराज जी ब्रज की ओर चले गये। वहां से सन् १९१२ में संगरूर सरदार हरचन्दसिंह के बगीचे में ठहरे। वहां पर ही सर्व प्रथम दादरी के भक्त नन्दकिशोर को उनके दर्शन हुवे।

श्री १०८ महाराज जी सबसे पहले सं० १९८३ (सन् १९०६) में घूमते घूमते जीन्द स्टेशन पर लाईनों के परे फूस की झोपडी में एक मास ठहरे। तुलसीराम रेलवे स्टोर मुन्शी आदि सेवा करते थे। सत्संग करके जाना कि ये तो कोई महापुरुष हैं मामूली साधू नहीं। यह कोई नहीं जान सका कि ये कौन हैं कहां से आये हैं? जीन्द से रामरिखा सरिश्तेदार व बनवारी लाल ठेकेदार आदि सत्संग करने आते थे। बनवारी लाल ने अपना एक आदमी उनको सेवा में छोड़ दिया। वहां से आप गोदावरी कुम्भ पर चले गये। तलवे में कंकड़ चुभने से पैर पर वरम हो गया। वापसी में छोटी लाईन से नारनौल गुड़गांवा ठैरते हुये आप पालम उतरे। स्टेशन पर मुन्नालाल स्टेशन मास्टर गांव के शिवालय में छोड़ आया। कल्लू खाती और

यादराम (म० दयानन्द) सेवा करते थे। बहुत आदमी प्रेम श्रद्धा से आने लगे। दर्शकों की भीड़ होने लगी। बड़े २ आदमी उनके सत्संग में आते और सत्संग उपदेश से मोहित होकर सेवा करते थे। कई बहुत घटनाएं देखने में आई। सब कहते थे कि सन्त व सिद्ध पुरुष हैं फिर आप भिवानी चले गये। सन् १९०६ में फिर जीन्द धर्मशाला में, सफीदों वालों के कारखाने में ठहर कर बनखण्डी पर आ गये। अयादास सेवा करता रहा। शहर के भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। खूब सत्संग रहने लगा। राजा साहब के चाचा भी सत्संग में आये। बड़े प्रभावित हुवे संगरूर चलने की प्रार्थना की। आप बहादुरगढ़, सांपला, असौदा, नजफगढ़, बेरी भ्रमण करते पालम पहुंचे। सन् १९०७ में आप नरेला पधारे फिर जीन्द गौशाला पर ठहरे। वहां जीन्द महाराज ने दर्शन किये बड़े प्रभावित हुवे कहा कि सन्त तो दुनिया में लम्बे बाबा हैं। महाराज जीन्द ने अपनी गाडी भेजकर सत्कार पूर्वक अपनी कोठी पर ठहराया। वहां श्री १०८ महाराज जी ने उनको राजनीति पर दिव्य उपदेश दिया वे सब बहुत प्रभावित हुवे। अहलकार लोग भी जान गये और वे संगरूर ले गये: वहां जीन्द महाराज के चाचा हरचरण के बाग में रहते रहे अपना सिपाही रामप्रताप (म० प्रतापानन्द) को सेवा में छोड़ दिया खाने पीने व रुपये का प्रबन्ध कर दिया। आप फिर जीन्द बनखन्डी ठहरते हुवे रामह्रद सूरज कुन्डी लक्षी देवी के मन्दिर पर रहे वहां से बीड़ घूमने नित्य जाते थे भक्त सत्संगी इन्हें ढूंढने जाते थे। सत्संग करते और उपदेशों से आनन्दित होते चन्दूलाल की धर्मशाला व हरसरूप की

हवेली में भी रहे। भोलाराम ईगरा वाले जो चिनाई का काम करते थे सत्संग करते और शब्द वाणी गाते थे। फिर वे भवानन्द साधू बन गये। आपने जीन्द आश्रम में गुफा और उसके ऊपर एक कोठा अपने हाथ से बनाया इस प्रकार श्री महाराज जी अपनी अलौकिक लीला सत्संग से सबको आनन्दित करते रहते। सन् १९०७ में आप नरेला भी गये म० नारायण दत्त ने बड़ी सेवा की। फिर सन् १९०९ में पानीपत पं० लक्षमण दत्त को दर्शन दिये वहां बोला शाह कलन्दर पर जाते थे। सांइयों ने कहा आप भी कुछ सुनाओ। अगले दिन आपने "सातों रंग निरखता" का ख्याल बनाकर सुनाया और समझाया। सांई बोले भई यह तो कोई औलिया है बड़ी श्रद्धा हो गई और आप वहां से चल दिये।

श्री महाराज जी रात के दो दो बजे तक सत्संग करते रहते थे भजन, शब्द और उपदेश होते रहते थे। उन दिनों "सिया रघुवीर भरोसो ऐसो" और "लज्जा मोरी राखो न श्याम हरो" यह दो भजन विशेष कर गाते थे और जब यह भजन गाते थे तो सारे सत्संगियों को रुला देते थे और आप भी रोने लगते थे। श्री महाराज जी उन दिनों में भी अछूतों से बहुत प्रेम करते थे। शरद ऋतु बिता कर श्री महाराज जी ब्रज का नाम लेकर वहां से चले गये।

श्री महाराज जी ब्रज से लौटकर पालम आये। पालम से नरेले आए और वहां कुछ समय रहकर सगरूर की तरफ चले गये। सं० १९६६ (सन १९०९) में श्री महाराज जी फिर श्रावण मास में नरेले आए और स्टेशन पर नन्दी की धर्मशाला में ठहरे। वहां एक

दिन कहने लगे कि श्रावण मास है पूड़े बनने चाहिएं। रात के दो बजे पूड़े बनने लगे। पूड़े बनाते २ सवेरे के पांच बज गये। श्री महाराज जो ने फरमाया कि शौच स्नान से निवृत्त होकर प्रसाद पाओ। सब लोग निवृत्त होकर श्री महाराज जी के पास आ गये। श्री महाराज जी स्वय भी प्रसाद पाने लगे और सब लोगों को प्रसाद बटवा दिया। श्री महाराज जो ने सबको अपने पास ही बिठा लिया। प्रतापसिंह जिसको श्री महाराज जी ने बाद में संन्यास दे दिया और अब प्रतापानन्द के नाम से मशहूर हैं। श्री महाराज जी को पूड़े देता जाता था और श्री महाराज जी पाते थे, साथ ही साथ श्री महाराज जी उपदेश भी दे रहे थे। बीच में ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ कि पं० प्यारेलाल ने अचानक लोगों से पुकार कर कहा कि तुम लोग श्री महाराज जो के चेहरे की तरफ देखो। सबने बड़े ध्यान से चेहरे की तरफ देखा। श्री महाराज जो की आंखें खुली हुई हैं और पलक झपती नहीं हैं। भोजन भी कर रहे हैं और बातें भी करते जाते हैं। पं० प्यारेलाल ने कहा श्री महाराज जी मन से सो रहे हैं, वाणी से बोल रहे हैं और मुख से खा रहे हैं। यह दृश्य देखकर सब आश्चर्य करने लगे। इतने में प्यारेलाल ने श्री महाराज जी के पांव को छुआ श्री महाराज जो एक दम चौंक पड़े और बोले कि हम तो सो ही गए थे उस दिन श्री महाराज जो ने बड़े प्रेम से प्रसाद पाया।

श्री १०८ श्री स्वामी परमानन्द जी महाराज एक बार बाबा भगवानदास जी के साथ दिल्ली से रेल द्वारा हांसी जा रहे थे। गुड़गांवा स्टेशन पर बाबा भगवानदास ने राव बहादुर बलबीर सिंह

को देखा जो कि उसी गाडी से रेवाड़ी जा रहे थे। बाबा ने श्री राव सहाब से कहा कि चलो मैं आपको आज एक दिव्य विभूति के दर्शन कराऊं। राव सहाब ने गाडी में श्री महाराज जी के दर्शन किये। और रेवाड़ी स्टेशन तक सत्संग चर्चा होती रही। इस स्वल्प काल में ही राव सहाब पर इतना प्रभाव पड़ा उन्होंने श्री महाराज जी को रामपुरा चलने का आग्रह किया। श्री महाराज जी उनके साथ रामपुरे चले गये। यह प्रथम विश्व युद्ध का समय था। राव सहाब आनरेरी कप्तान और रेक्रूटिंग आफीसर थे। वे बताया करते थे कि श्री महाराज जी सात फुट से भी ज्यादा लम्बे थे। मेरे मन में आया और मैं लम्बाई मापने वाला बांस श्री महाराज जी को नापने के वास्ते ले आया। श्री महाराज जी ने हंस कर टाल दिया। मुझे क्या पता था कि अज्ञान से जिनको मैं भरती करने चला था उनकी फौज का मैं खुद ही सिपाही बन जाऊंगा। हुवा भी यह ही तीन चार दिन के सत्संग से उन पर जिन्होंने कभी साधु सन्तों का सत्संग नहीं किया इतना प्रभाव पड़ा कि उनकी इच्छा हुई कि श्री महाराज जी यहां पर ही रहें और मैं आजन्म इनकी सेवा में रहूँ। परन्तु श्री महाराज जी यह कह कर कि तुम्हारे आग्रह और प्रेम से हम यहां तुम्हारे घर पर ठहर गये हैं हम तो यूं ही जंगल में इधर उधर टिक जाया करते हैं हांसी चले गये। हांसी में एक तालाब पर पहुंचे। जहां महात्मा चेतराम के पास कुछ सत्सगी बैठे थे महात्मा ने यह प्रतिज्ञा की हुई थी कि यदि आज श्री महाराज जी के दर्शन मुझे नहीं होंगे तो मैं जिन्दा जल जाऊंगा। उस भक्त को श्री महाराज जी के दर्शन करके अपार अपार आनन्द हुआ।

इधर राव सहाब इस विचार में थे कि कैसे मैं श्री महाराजजी को यहां लाकर उनकी सेवा से कृतकृत्य हूँ। उन्होंने रामपुरा ग्राम के पश्चिम में एक जोहड़ी पर जहां एक छोटी सी बगीची थी और श्री महाराज जी जब रामपुरे ठहरे थे वहां पर प्रायः आया करते थे एक श्री महाराज जी के ठहरने के वास्ते एक मकान बनवा दिया। मकान जब बन कर तयार हो गया तो उनको बाबा भगवानदास से पता लगा कि श्री महाराज जी हरिद्वार ठहरे हुवे हैं। राव सहाब राव छाजूराम और महाशय दिलीपसिंह को साथ लेकर हरिद्वार गये और श्री महाराज जी से रामपुरा चलने की प्रार्थना की। श्री महाराज जी ने राव सहाब की कई प्रकार से परीक्षा ली कहा कि हमारा बहुत खर्चा है। राव सहाब ने कहा कि मेरे गांव हैं। यदि इनसे भी काम न चलेगा तो झोली उठाऊंगा। श्री महाराज जी राव सहाब का इतना प्रेम देख कर चलने को राजी हो गये। परन्तु कहा कि तीर्थ स्थान पर आये हो कोई अच्छी प्रतिज्ञा करो। राव सहाब ने कहा कि महाराज जी मैं और तो कुछ जानता नहीं एक प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आपके समक्ष कभी झूंठ नहीं बोलूंगा। यह सुन कर श्री महाराज जी प्रसन्न हुवे और कहा कि यह तो बहुत बड़ी बात है। और राव सहाब ने अपने जीवन में इस प्रतिज्ञा को सच करके दिखा दिया। उन्होंने अपनी किसी भी बात को श्री महाराज जी से नहीं छुपाया। श्री महाराज जी रामपुरे आ गये। परन्तु बीच २ में गढ़ी, जीन्द, पालम, संगरूर आदि स्थानों पर विचरण भी करने चले जाया करते थे।

मुन्शी रूपराम जी जिनका जन्म स्थान गढ़ी बोलनी था भरतपुर में तहसीलदार थे। उन्होंने श्री महाराज जी के बारे में सुना और दर्शनार्थ रामपुरे आये। वे श्री महाराज जी के उपदेश से इतने प्रभावित हुवे कि नौकरी छोड़ कर अपने ग्राम में एक आश्रम बना कर रहने लगे। श्री महाराज जी भी जब तब उस आश्रम में जाते रहते थे। महाशय दिलीपसिंह जिनकी मुन्शी जी की बड़ी लड़की ब्याही थी वानप्रस्थ लेकर आश्रम में आ गये। निखरी ग्राम के महाशय रामपत को जब पता लगा कि राव सहाव के पास कोई सन्त ठहरे हुये हैं तो वे भी दर्शनार्थ आये। पहली बार दर्शन करने पर उन्हें श्री महाराज जी के चरणों में श्रद्धा हो गई और वानप्रस्थ लेकर यहां पर ही रहने लगे।

दादरी के भक्त नन्दकिशोर जी को श्री महाराज जी के आश्रम में आने से पहले ही उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुवा हुवा था। वे भी अपनी धर्मपत्नि, बहिन सम्बिदादेवी और पुत्री गोदावरी, कमलादेवी सहित आश्रम में आने लगे और शनैः २ ये सब आश्रम में मकान बना कर स्थायी रूप से रहने लग गये। इसी प्रकार लाला नूनकरणदास भिवानी वाले जिनको को श्री महाराज जी का सत्संग पहले से ही प्राप्त था आश्रम में आते रहते थे। शनैः २ उन्होंने भी अपना मकान बनवा कर आश्रम में रहना शुरू कर दिया। रामपुरे के गोभक्त दिलसुख जिन्होंने पीछे संन्यास ले लिया श्री महाराज जी के उपदेशों से अत्यन्त प्रभावित हुवे। उन्होंने भी अपना जीवन श्री चरणों में अर्पित कर दिया।

सन् १९१९ की बात है। श्री महाराज जी रामपुरे ठहरे हुवे थे। दिल्ली से ला० मथुराप्रसाद, भटिण्डे से ला० रामजीदास, दादरी से ला० नन्दकिशोर, जोन्द से ला० किशनलाल, म० दिलीपसिंह, म० रामपत आदि श्री महाराज जी के पास आये हुवे थे। ला० रामजीदास ने श्री महाराज जी से निवेदन किया कि आश्रम में कुछ काम होना चाहिये। श्री महाराज जी तो चाहते ही थे कि यहां पर कोई काम हो। उन्होंने तो सन् १९१७ में ही शरद पूर्णिमा के दिन खीर बनवा कर कह दिया था कि अब यहां पर अच्छा काम होने जा रहा है इसलिये सब भूत प्रेतों को आज्ञा दी कि अपना २ खीर का भाग लेकर अन्यत्र चले जाओ। स्मरण रहे कि राव साहब ने जहा श्री महाराज जी के वास्ते मकान बनवाया था उसके आस पास छोटी छोटी श्मशान भूमि थी। राव साहब को आज्ञा हुई कि वे थोड़ी सी जमीन आश्रम के नाम कर दें। राव सहाब ने तुरन्त ही कमेटी बना कर जमीन के एक टुकड़े की रजिस्ट्री करादी। उन्हीं दिनों में नये गांव के दो लड़के ठाकरसिंह और कुन्दनसिंह श्री महाराज जी के पास आये और कहने लगे कि हम संस्कृत पढ़ने के लिये काशी जाना चाहते हैं। श्री महाराज जो ने फर्माया कि वहां अहीरों को कोई भी संस्कृत नहीं पढायेगा और एक संस्कृत के अध्यापक पं० प्यारेलाल को रख कर संस्कृत पढाने का प्रबन्ध कर दिया। घोसाराम, राजाराम मित्रसेन, हरीराम, शंकरदेव, रामस्वरूप, रामदयाल, हीरानन्द, नवलकिशोर, दामोदर देव, केशवदेव, गौरीशंकर, विश्वामित्र, प्रभुदत्त, चन्द्रदेव, हरिओम कई ब्रह्मचारी इस पाठशाला में आ गये।

आज भारत सरकार अछुतोद्धार, वृक्षारोपण और श्रमदान की ओर काफी ध्यान दे रही है। श्री महाराज जी ने जब से आश्रम में पदार्पण किया वृक्षों का महत्व सब को समझाया और जो भूमि राव सहाब ने आश्रम को दान की उसमें वृक्ष लगवाने प्रारम्भ करा दिये तथा आश्रम के बीच में एक बड़ा तालाब भी खुदवाना प्रारम्भ कर दिया। ब्रह्मचारी सवेरे उठ कर तालाब में मिट्टी खोदते और दर्शनार्थ आने वाले लोग उस मिट्टी को बाहर डालते। यह नियम श्री महाराज जी ने कर दिया था कि जो कोई हमारे पास आवे वह पहले पांच टोकरी मिट्टी तालाब में से निकाल कर हमारे पास आवे। इस नियम का जो भी श्री महाराज जी के पास आते थे सब ही बड़े प्रेम से पालन करते थे। यहां तक कि बड़े से बड़े अंग्रेज अफसरों ने भी इस नियम का बड़ी प्रसन्नता से पालन किया। तालाब में सदा ही सैंकड़ों आदमी मिट्टी निकालते थे। और इस प्रकार यह तालाब थोड़े दिन में ही खुद गया। शनैः २ इसमें घाट बनने लगे और २०० फुट लम्बे और १५० फुट चौड़े इस तालाब में शीघ्र ही १२ घाट बन गये। यह श्रमदान का एक अद्भुत जीता जागता सुन्दर प्रतीक आज भी लोगों के मनों को मोह रहा है। प्रातः, सायं ब्रह्मचारी वृक्ष लगाते और उनमें पानी देते बरसात के दिनों में जगह जगह रौस पट्टियां बनाते और जिस भूमि में बिना जूतों के चलना कठिन था आज वहां चलने के लिये साफ सुथरी रौस पट्टियां बनी हुई हैं। यह काम आज भी सामूहिक श्रम दान की याद दिला रहे हैं और बता रहे हैं कि किस प्रकार मेहनत और पुरुषार्थ से बिना पैसा

खर्च किये केवल वर्षा के आधार पर हजारों की संख्या में वृक्ष लगाये जा सकते हैं। एक बार सर छोटूराम आश्रम में आये तो इस सुन्दर उपवन को देख कर कहने लगे कि मुझे इस सुन्दर वृक्षावली को देख कर ऐसा लगता है कि मैं हांसी के नहरी इलाके में घूम रहा हूँ।

सन् १९१९ की बात है सब ग्रामों की भान्ति रामपुरे में भी छूतों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं होता था। उनको कूवों से पानी नहीं भरने दिया जाता था, वे जेवर नहीं पहन सकते थे। पक्के मकान नहीं बना सकते थे। विवाह शादी में मिठाई भी नहीं बना सकते थे। श्री महाराज जी ने राव सहाब को कहा कि यह सब बातें समाप्त कर देनी चाहियें। यह भी हमारे जैसे ही आदमी हैं। इनके साथ अत्याचार किया जा रहा है। इन्हीं अत्याचारों से दुखी होकर यह लोग अपना धर्म परिवर्तन कर लेते हैं।

उन्होंने एक बात कही कि अछूतों पर हिन्दू समाज ने बड़े २ अत्याचार किये तो इन लोगों ने जाकर गजनी में गौरी आदि के रूप जन्म लेकर इन अत्याचारों का बदला लिया। उन्होंने कहा इनको सफाई सिखाई जाय और पढाया लिखाया जाय। राव सहाब ने यह सुन कर अछूतों पर से सब प्रतिबन्ध हटा दिये। श्री महाराज जी ने अछूत बालकों के पढने के लिये सन् १९१९ में अछूत पाठशाला आश्रम में खोल दी। इस पाठशाला में पढाई, लिखाई के साथ २ उनको सफाई रखना सिखाया जाता था तथा कबीर आदि महात्माओं की बाणियां कण्ठस्थ करा कर खंजरी और ढपली पर गवाई जाती थी जिसको सुन कर आगन्तुक मन्त्र मुग्ध हो जाते थे।

एक बार सेठ जमनालाल बजाज और हरिभाऊ उपाध्याय आश्रम में आये। उन दिनों महात्मा गांधी ने भी अछूतोद्धार का कार्य आरम्भ कर दिया था। आश्रम में भी अछूतोद्धार का कार्य पहिले ही हो रहा है इसी हेतु वे यहां से कुछ प्रेरणा लेने के लिये यहां आये। वे साफ सुथरे अछूत बालकों को देख कर बड़े प्रसन्न हुवे और उनके खंजरी पर गाये हुवे भजनों को सुन कर तो वे मन्त्र मुग्ध से हो गये। सहज स्वभाव से श्री महाराज जी ने उनसे पूछ लिया कि तुम इन बालकों के हाथ का बनाया हुवा भोजन भी खा सकते हो क्या? सेठ जी ने उत्तर दिया कि खाया तो कभी नहीं है। परन्तु खाने में परहेज भी नहीं है। यदि ये बालक न्हा धोकर बनावेंगे तो हमें कोई ऐतराज नहीं है। जमना नाम के एक बालमीकी बालक ने बड़े प्रेम से चूरमा बनाया। सर्व प्रथम श्री महाराज जी ने खाना प्रारम्भ किया और पीछे सेठ जमनालाल जी, उपाध्याय जी रावसहाब, भक्त जी तथा अन्य आश्रमवासियों ने खाया। लेखक ने यह समाचार उन दिनों दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक विश्वमित्र में छपा दिया। इस समाचार के छपने पर कई दिन तक इस पर टीका टिप्पणी छपती रही। अन्त में भ्रम निवारणार्थ सेठ जमनालाल बजाज ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने लिखा कि हमने आश्रम में हरिजन बालकों के हाथ का भोजन किया है। परन्तु हरिजन बालकों का उद्धार उनके हाथ के खाने से नहीं होगा। उनका कल्याण तो उनके पढाने लिखाने और सफाई सिखाने से होगा। बाद में कई वर्ष पश्चात जब एक बार फिर हरिभाऊ जी उपाध्याय आश्रम में आये तो उन्होंने बताया कि

विश्वमित्र में छपी खबर को हमारे पिता जी ने जब पढा तो उनको बड़ा ही दुख हुवा और अपनी भावना के अनुसार वे आमरण अनशन करके बैठ गये। उपाध्याय जी ने कहा कि हमने उनसे व्रत तोड़ने के लिये बड़ी अनुनय विनय की परन्तु जब हमें सफलता नहीं मिली तो एक उपाय याद आया। हमने पिता जी से पूछा कि अपराध किसने किया है। वे कहने लगे कि तुमने किया है। तो हमने कहा कि इसका दण्ड भी मुझे ही भोगना चाहिये। अतः आप आमरण अनशन छोड़दें मैं आज से आमरण अनशन करता हूँ। मेरी यह बात सुन कर वे द्रवीभूत हो गये और अपना व्रत तोड़ दिया।

सन् १९२० की बात है। प्रिंस आफ वेल्ज भारत आ रहे थे। कांग्रेस ने उनके स्वागत का बाई काट किया हुवा था। उसी समय दिल्ली के पुराने किले में अछूतों का एक बड़ा भारी जलसा होने जा रहा था। श्री महाराज जी ने सुना कि उस जलसे में हजारों की संख्या में अछूत लोग ईसाई बन रहें हैं। उन्होंने अछूत पाठशाला के कुछ बालकों को जो अच्छे स्वर से गाते थे यह भजन बना कर याद कराया:—

धर्म मत हारो रे जग में जिन्दगी दिन चार ॥ टेक ॥

जब उनको यह भजन याद हो गया तो उन्होंने म० दिलीपसिंह (म० कृष्णानन्द) को बुला कर कहा कि तुम इन बालकों को उस जलसे में ले जाओ। ये बालक स्टेज पर यह भजन गावेंगे। यदि स्टेज पर गाने की आज्ञा न मिले तो वैसे ही जहां तहां खड़े होकर ये

बालक लोगों को यह भजन सुनावेंगे। म० दिलीपसिंह उन बालकों को लेकर जलसे में गये। वहां ईसाई मत के समर्थन में बड़े २ व्याख्यान हो रहे थे। उसी बीच इन बालकों ने भी खंजरी पर अपना भजन बड़े भाव से गाया। भजन को सुन कर जलसे के आयोजकों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। तुरन्त ही उनके सभापति ने बड़े भाव से कहा कि आज हम अपने धर्म से विचलित हो गये थे। इन बालकों ने इस भजन द्वारा हमें सही मार्ग दिखा दिया है। उहोंने आगन्तुक पादरियों को सम्बोधित करके कहा कि अब हमने अपने सच्चे धर्म को समझ लिया है। हम मरने को मर जावेंगे परन्तु अपना धर्म नहीं छोड़ेंगे। पादरी लोग अत्यन्त निराश होकर वापिस चले गये और इस प्रकार हजारों अछूत ईसाई बनने से बच गये। यह अछूत पाठशाला आश्रम में बहुत लम्बे समय तक तब तक चलती रही जब तक के सरकार ने प्राइमरी शिक्षा की अनिवार्य करके अपने हाथ में न ले लिया।

अब आश्रम में अछूत पाठशाला और ब्रह्मचर्याश्रम में संस्कृत पाठशाला ये दो सस्थायें बन गई थीं। लेखक के पिता म० रामपत जी आश्रम में आते रहते थे। उन्हीं की प्रेरणा से मुझे भी श्री महाराज जी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुवा। मैं और मेरे मित्र शंकरदेव प्राय: आश्रम आया करते थे। हमारे दोनों का श्री चरणों में प्रेम जब २ आते थे अधिकाधिक बढता जाता था। एक बार मैं श्री महाराज जी के दर्शनार्थ आश्रम में आया। मैं दिल्ली पढ़ता था। कालिज का दाखिला तीन मास पश्चात् होना था श्री महाराज जी ने आज्ञा दी कि जब तक दाखिल न हो अछूत पाठशाला में पढा दिया

कर। मैंने श्रद्धापूर्वक हां भरली और अगले दिन आने को कह घर चला गया। जब मैंने यह समाचार घर जाकर पिता जी को सुनाया तो उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। अधिक प्रसन्नता इसलिये हुई क्योंकि मेरा विचार विलायत जाकर बरिस्टर बनने का था। पिता जी इस पेशे को बहुत बुरा समझते थे। उन्होंने मुझे कम से कम एक वर्ष आश्रम में रहने की सलाह दी। परन्तु मेरा विचार केवल तीन मास रह कर आगे पढने का था। इसी विचार के साथ मैं आश्रम आया। उन दिनों रेवाड़ी के अहीर बोर्डिंग हाउस में म० दिलीपसिंह अधीक्षक थे। मैं म० शोभाराम और म० दिलीपसिंह के साथ श्री महाराज जी के पास आया। आते ही श्री महाराज जी ने प्रश्न किया "भूम तू आ गया" मेरा नाम भोमसिंह था। परन्तु श्री महाराज जी मुझे 'भूम' ही कहा करते थे। मैंने उत्तर दिया "हां महाराज जी" उन्होंने फिर पूछा "अब नहीं जावेगा"। मैंने कहा "नहीं महाराज जी"। उन्होंने फिर पूछा "कालिज में नहीं पढेगा"। मैंने कहा 'नहीं जी'। मेरा इस प्रकार का कोई इरादा नहीं था। मैं तो केवल तीन मास के इरादे से घर से आश्रम आया था। पिता जी से भी यह ही कह कर आया था। परन्तु जो कुछ श्री महाराज जी के समक्ष कहा मैं समझता हूँ उन्हीं की अज्ञात दैवी शक्ति ने मुझसे कहलवाया। उस दिन से श्री महाराज जी की कृपा से मेरे जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुवा।

इधर मुन्शी रूपराम जी जो तहसीलदारी छोड़ कर आ गये थे और जो अपने ग्राम से बाहर एक छोटा सा आश्रम बना कर रहने लग गये थे उन्होंने आश्रम में श्री महाराज जी की सेवा में रहने की

ठानी। वे अपनी धर्मपत्नि और तीनों पुत्रियों सूरजदेवी, क्षमादेवी और वृजकुमारी सहित आश्रम में आ गये। मैं पहले ही बता चुका हूँ कि उनकी बड़ी लड़की उमरावदेवी अपने पति म० दिलीपसिंह सहित पहले ही आश्रम में वनस्थी होकर रहने लग गये थे। मुन्शी जी को आज्ञा हुई कि आश्रम में कन्याओं की शिक्षा के लिये कन्या पाठशाला खोली जाय। श्री महाराज जी का स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान था। इस प्रयोजनार्थ मुन्शी जी की देख रेख में कन्या पाठशाला खोल दी गई और उनकी पुत्री सूरजदेवी पाठशाला में पढ़ाने लग गई। इधर ब्रह्मचर्याश्रम में भी शनैः शनैः ब्रह्मचारियों की संख्या बढ़ने लगी। पानीपत के पं० लक्ष्मणदत्त जी जिनकी श्री महाराज जी में बड़ी श्रद्धा थी ने अपने तीन पुत्र राजाराम, जयराम और हरीराम को श्री चरणों में भेज दिया। शंकरदेव, रामस्वरूप, रामदयाल, धूमीसिंह, नारायण, तेजराम भक्त, नवलकिशोर, दामोदर, हरिओं, लक्ष्मण, प्रभुदत्त, रुद्रदेव, विष्णुदेव, चन्द्रदेव केशवदेव, राम आदि कितने ही लोग श्री चरणों में आ गये। ये सब दिन में पांच-छः घन्टे बड़े ही प्रेम से शारीरिक श्रम-मिट्टी खोदना, सड़क बनाना, वृक्षों में पानी देना आदि का काम करते थे आश्रम का सरोवर, हजारों वृक्ष, चलने फिरने के लिये सुन्दर सड़कें इनके श्रम का जीता जागता प्रतीक है।

सन् १९१९ की बात है। श्री महाराज जी के लिये राव सहाब ने जो मकान बनवाया-उस समय तक आश्रम में एक वह ही मकान था उसमें रहा करते थे। अचानक एक दिन उनके पलंग में एक चुहिया घुस गई, वह कभी उनकी सौड़ में कभी उनके चोगे में आ

जाती थी। महाराज जी ने उसे दूर करने की चेष्टा की परन्तु वह निकली नहीं। इस पर श्री महाराज जी ने अपनी सौड़ फैंक दी और लम्बा कुड़ता-वे केवल एक ही कुड़ता पहना करते थे- भी उतार कर फैंक दिया। उस समय आश्रम के मैनेजर दिलीपसिंह थे। यद्यपि उनके हृदय में महाराजजी के प्रति कम श्रद्धा न थी जाने क्यों अपने मन में यह धारणा करली कि इनकी बायु भड़क गई है कहीं ऐसा न हो कि श्री महाराज जी कूवे में छलांग मार दें। यह समझकर उन्होंने सारे मकान के दरावजे और खिड़कियां बन्द करादी। श्री महाराज जो ने हम सबसे दरवाजे खोल देने के लिये कहा परन्तु हमारी किसी की भी हिम्मत मैनेजर की बिना आज्ञा के दरवाजे खोलने की नहीं हुई। रामपुरे राव सहाब को भी सूचित किया गया। उन्होंने तुरन्त रेवाड़ी से हकीम को बुलवाया। उस समय तक श्री महाराज जो की खुश्की के कारण जबान भी तुतला गई थी। हकीम ने आकर जंगले खुलवा दिये। इतने में धारूहेड़ा के राव छाजूराम जो मैनेजर के मामा लगते थे आगये। उनको जब सब वृत्तान्त मालूम हुवा तो कहने लगे कि तुम सब पागल हो गये हो। ये जंगल में रहने वाले सन्त हैं। इनके लिये ऐसी ही तेज लू ऐसी ही ठण्डी बर्फ। इनके वायु भड़कने का क्या काम। यह कह कर उन्होंने तपाक से दरवाजे खोल दिये। श्री महाराज जी बाहर आ गये और उनके मुखारविन्द से निकला "छाजूराम तेरा भला हो"। महाराज जी बाहर एक नाम की छाया में आकर बैठ गये। उनका पलंग वहां पर ही बिछा दिया गया और दिन रात कई मास तक वहां पर ही रहने लगे तथा इस दुखद घटना

को श्री महाराज जी बार २ आगन्तुक भक्तों को सुनाया करते थे। यह ही नहीं वे उस मकान में फिर कभी भी नहीं घुसे।

राव सहाब फौज में कप्तान थे। प्रथम युद्ध में फौज में हजारों की संख्या में उन्होंने रंगरूट दिये थे। इस सिलसिले में उन्हें मुरब्ब मिले, ओ० बी० ई० आदि कई उच्च पदों से विभूषित किया गया। वे एक बार रंगरूटों की एक ट्रेन भर कर सागर गये वहां उनको गार्ड आफ आनर दिया गया। वहां से बाद में वे मेरठ ट्रेनिंग के लिये गये, वहां वे सख्त बीमार होकर रामपुरे आ गये। बहुत दिनों तक इलाज चलता रहा मगर रोग बढता ही गया। उनको फल के रस को तो बात ही क्या पानी भी हजम नहीं होता था। श्री महाराज जी के पास दादरी से भक्त नन्दकिशोर अपनी माता सहित आये हुवे थे। महाराज जी ने उनको रामपुरे भेज कर राव सहाब को अपने पास बुलवा लिया। वे सायंकाल रथ में बैठ कर आश्रम आगये। श्री महाराज जी ने अपने पास ही एक नीम के वृक्ष के नीचे उनके बिस्तर लगवा दिये। सायंकाल भक्त जी की माता जी ने महाराज जी के लिये दाल और फुल्के बनाये। जब श्री महाराज जी भोजन कर चुके तो उन्होंने आज्ञा दी कि राव सहाब को भी दाल और फुलके दे दो। राव सहाब के सेवादारों को बड़ा आश्चर्य हुवा कि जिनको पानी भी हजम नहीं होता है उनको महाराज जी दाल फुलके दिला रहे हैं। परन्तु क्योंकि महाराज जी ने आज्ञा दी थी अतः राव सहाब ने बड़ी ही श्रद्धा के साथ थोड़ी दाल और एक फुलका खालिया। श्री महाराज जी की आज्ञा और राव सहाब की श्रद्धा वह दाल और फुलका राव

सहाब के लिये पथ्य हो गया। यह ही क्रम अगले चार पांच दिनों तक चलता रहा। इस प्रकार कई मास को वह घातक बीमारी जिसके लिये हकीमों ने भी जवाब दे दिया देखते देखते श्री कृपा से दूर हो गई। जब राव सहाब स्वस्थ्य हो गये तो उनके कारिन्दों ने आकर राव सहाब को रामपुरे चलने की प्रार्थना की। धन्य है उन राज ऋषि को जिन्होंने उत्तर में कहा " तुम लोगों को तरफ से तो मैं मर चुका था। मुझे तो महाराज जी की कृपा से यह पुनर्जीवन मिला है। अब बलबीर रामपुरे नहीं जावेगा। मेरी शेष आयु श्री महाराज जी के चरणों में ही व्यतीत होगी"। अपने कहे हुवे इन वचनों को उन्होंने अपने जीवन में मन, वचन और कर्म से सत्य कर दिखाया। तब ही से वे आश्रम में ही रहने लग गये। रामपुरे के महलों का राजसी ठाठ छोड़ दिया। महाराज जी के पलंग के पास नीचे भूमि में बिस्तर बिछा कर ही सोना प्रारम्भ कर दिया। क्योंकि महाराज जी पहले बने हुवे मकान को त्याग दिया था अतः रावसहाब ने एक और कच्चा मकान महाराज जी के लिये बना दिया। नीचे एक कमरा और चारों ओर के छप्पर में ब्रह्मचारी रहते थे और ऊपर की एक फूस की रावटी में महाराज जी रहने लग गये। गर्मी की झुलसती हुई लू में उसी रावटी में रहे। राव सहाब भी रात को वहीं उनकी सेवा में ही रहने लग गये। सर्दी का मौसम आया तो उस रावटी के खुले द्वारों को ईंटों से बन्द कर दिया गया। इस प्रकार कई वर्ष इसी अवस्था में निकल गये। जब राव सहाब ने आश्रम में रहना प्रारम्भ कर दिया तो उनकी दोनों रानियों की भी इच्छा

आश्रम में रहने की हुई। उस समय तक भटिंडे के सेठ रामजीदास ने ने कन्या पाठशाला के वास्ते एक मकान बनवाना आरम्भ कर दिया था। मकान के बीच के कमरे पर छत भी नहीं गिरी थी। बड़ी रानी निहालकोर जो उसी बिना छत वाले कमरे में अपनी पुत्री राजकुमारी सुमित्रादेवी सहित आकर रहने लग गई। छत की जगह एक त्रिपाल तान दिया गया। उस समय जो भी श्री महाराज जी के चरणों में आये उन्हें न ही स्वादिष्ठ भोजन खाने का चाव था, न ही सुन्दर वस्त्र पहनने का और न सजे सजाये मकानों में रहने का। इन बातों के विचार के लिये किसी के पास भी समय भी नहीं था। सवेरे ही सब तालाब में मिट्टी खोदने लग जाते थे। ब्रह्मचारी लोग मिट्टी खोदते और रानी जी, सूरजदेवी, सुमित्रादेवी, गोदावरी, कमलादेवी आदि अपने सिर पर टोकरी रख कर मिट्टी डालती। अगर रौस पट्टी बनाने का काम होता तो ब्रह्मचारी फावड़े से रौस पट्टी बनाते और ये मातायें और बहिनें वृक्षों में पानी डालतीं। यह क्रम दैनिक प्रात: चार पांच घन्टे चलता था। फिर भोजन आदि के काम में लग जाते भोजन के पश्चात तीन चार घन्टे पठन पाठन चलता और सायंकाल को फिर श्रमदान में जुट जाते। रात्रि के भोजन के पश्चात् दस ग्यारह बजे तक सत्संग व भजन कीर्तन होता रहता। इसके पीछे दिन भरके श्रमित आश्रम वासी प्रगाढ़ निद्रा की गोद में चले जाते। यह ही क्रम प्रति दिन चलता रहता था। इधर उधर के व्यर्थ के ठाठ बाट के लिये किसी को अवकाश ही नहीं मिलता था।

सन् १९२० में श्री महाराज जी की निजी सेवा का काम

अधिकतर मुन्शी जी की लड़की सूरजदेवी करती थी। वैसे प्रत्येक आश्रम वासी महाराज जी की सेवा के अवसर की तलाश में रहता था। एक बार की बात है श्री महाराज जी को ज्वर हो गया। बारी बारी से सब ही ब्रह्मचारी रात को उनकी सेवा में रहते थे। एक बार मेरी ड्यूटी लगी। मुझे नींद आ गई और जब श्री महाराज जी ने पानी मांगा तो मैं नींद के कारण उठा नहीं। प्रात: श्री महाराज जी ने पूछा कि आज हमारे पास कौन था। मैंने उत्तर दिया कि मैं था। तो उन्होंने बड़े प्रेम से कहा कि बीमार के पास जो रहे उसमें आलस्य और प्रमाद नहीं होना चाहिये। यह सुन कर मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुवा। हाथ जोड़ कर क्षमा मांगी और विनय की कि अब ऐसा नहीं करूंगा। उस दिन से मेरे मन में महाराज जी की सेवा करने की विशेष उत्कण्ठा हो गई। मैं सदा सेवा के अवसर की तलाश में रहता था। श्री महाराज जी के पैर के अंगूठे में एक बड़ी आंटन थी। जब चलते फिरते थे तो जोर पड़ने पर वह फट जाया करती थी। उसको नरम रखने के लिये सूरजदेवी रोज पुलिटस बना कर उसे सेका करती थी। धीरे २ यह सेवा मुझे मिल गई। इसी प्रकार श्री महाराज जी के भोजन बनाने की सेवा पर भी होड रहती थी। इसमें विशेष होड सूरजदेवी, ब्र० हरीराम और मेरे बीच रहती थी। यद्यपि श्री महाराज जी ने सबको ही समय २ पर इस सेवा का अवसर प्रदान किया। परन्तु उनकी महती दया से मुझे ही उनकी विशेष सेवा का अवसर मिला।

विश्वामित्र अखबार में सेठ जमनालाल जी के आश्रम में

अछूतों के हाथ का भोजन करने के समाचार से तथा राव बहादुर सहाब ने म० गांधी जी के दर्शन किये तब इस विषय में जो चर्चा म० गांधी से हुई । महात्मा जो ने कई बार आश्रम आने का वचन राव सहाब को दिया। एक बार दिल्ली से वे जयपुर जा रहे थे तब तो उन्होंने पक्के तौर से कह ही दिया था कि अब की बार इधर आने पर आश्रम में आने का विचार है। परन्तु थोड़े दिन पीछे अंग्रेजी सरकार ने उनको गिरफ्तार करके जेल भेज दिया। म० गांधी जी तो इच्छा होते हुवे भी आश्रम नहीं आ सके परन्तु उन्होंने मीरा बहिन (मिस स्लेड) को गोपाल राव वालुंझकर और कृष्णन नायर के साथ आश्रम भेजा। वे लगभग दो मास से अधिक समय तक आश्रम में रहे। उन दिनों आश्रम के ब्रह्मचारो गोचर भूमि में पाला काटते थे। मीरा बहिन यद्यपि इस काम से भिज्ञ नहीं थी परन्तु फिर भो वे जेली और बांकड़ी लेकर सबके साथ गोचर भूमि में बड़े ही प्रेम से पाला काटने जाया करती थी। वे आश्रम में हिन्दी भी मेरे से पढा करती थी। आश्रम से वापिस जाते समय उन्होंने आश्रम की लौग बुक में लिखा:—

भवगद्भक्ति आश्रम में प्रवेश करना मानो प्रेम और शांति के साम्राज्य में प्रवेश करना है। लगाये हुए वृक्ष तथा फूल हरे भरे खेत, कूंजती हुई चिड़ियें, जंगली जानवर (जो अब जंगली नहीं हैं) सभी सभो मानो सर्व व्यापी प्रेम रूपी ईश्वर का बखान करते हैं। यहां पुस्तकें और धार्मिक शिक्षा के साथ ही साथ शारीरिक प्ररिश्रम और सादे जीवन की भी शिक्षा दी जाती है हर एक व्यक्ति अपना काम

अपने ही हाथ से करता है। वाटिका और गोशाला भी आश्रमवासियों द्वारा बड़े प्रेम से संचालित होती हैं। इस तरह प्रत्येक वस्तु स्वच्छ और प्रेमांकित दिखाई देती है।

गोशाला को देख कर तो मुझे और ही आनन्द हुवा। गोशाला की पवित्रता और स्वच्छता आदर्श रूप है। सीधी गायें और उनके स्वच्छ बछड़ों का दृश्य बड़ा आनन्द दायक है।

दूसरे अन्त्यज बालकों की पाठशाला आश्रम का बड़ा ही सुन्दर कार्य है।

मीरां

एक बार श्री महाराज जी भिवानी गये। वहां वे एक स्थान पर ठहरे हुवे थे। लोग उनके सत्संग में आया करते थे। सत्संगी भक्त कुछ स्वार्थी भी हुवा करते हैं। एक बार एक भक्त ने प्रश्न किया कि महाराज जी वर्षा होगी कि नहीं। उन्होंने सहज स्वभाव से कह दिया कि ठहरे रहे तो होगी चले गये तो नहीं होगी। कुछ ऐसा कारण बना कि महाराज जी को अगले ही दिन भिवानी से जाना पड़ा। उस भक्त ने यह समझ कर अन्न की खरीद कर ली। हुवा भी यह ही और उसको कई हजार रुपये का लाभ हो गया। वह भक्त ला० नूनकरण दास से बार बार महाराज जी के बारे में पूछा करता था। परन्तु महाराज जी सब प्रकार से समर्थ और सिद्ध होते हुवे भी इस प्रकार के पाखण्डों से बचते रहते थे।

दिल्ली के उन दिनों के प्रसिद्ध दान्तों के डाक्टर राघुनाथ जी हर शनिवार को श्री महाराज जी के दर्शनार्थ आया करते थे। एक बार उनके भाई भी आश्रम में आये। आश्रम में रहने वाले आश्रम वासियों का उन दिनों भोजन बड़ा ही सादा होता था। सब लोग गेहूँ जौ और चने की बिना छाने आटे की रोटी बिना नमक डाले खाते थे। साग सबजी भी नहीं होता था। परन्तु दर्शनार्थ आने वाले सत्संगी प्राय: भण्डारे कर दिया करते थे। इस प्रकार के भण्डारे प्राय: सप्ताह में एक दो बार हो जाया करते थे। इस प्रकार से वैसे तो शरीर को आवश्यक पोषक पदार्थ मिल जाता था। परन्तु फिर भी डा० रघुनाथ के भाई ने निवेदन किया कि ब्रह्मचारियों को महाराज जी दूध अवश्य मिलना चाहिये। महाराज जी ने उनको गाय मंगा कर देने की आज्ञा दी। उन्होंने तुरन्त २५० रुपये में एक बहुत अच्छी दुधारू नसल की गाय मंगा कर दे दी। यहां से आश्रम की आदर्श गौशाला का श्री गणेश होता है। गौशाला के लिये पहले कच्चे छप्पर ही बनवाये गये। परन्तु बाद में गो भक्तों ने अपने २ नाम से गौवों के क्वाटर बनवा दिये। फफूंद निवासी माई द्रोपदीदेवी को कुम्भ के मेले पर म० रामानन्द जी (म० रामपत) के दर्शन हुवे। उन्होंने माई द्रोपदीदेवी को श्री महाराज जी की महिमा का वर्णन किया। उनके उपदेश से प्रभावित होकर माई द्रोपदीदेवी आश्रम में आई। महाराज जी के दर्शन करके उन्होंने अपने आपको कृतार्थ माना। और आश्रम में एक मकान बनाकर अपनी पुत्री और उनके पुत्र ओंकारनाथ तथा लड़कियां सहित रहने लग गईं। आज

उनका समस्त परिवार श्री महाराज जी के अनन्य भक्तों में गिना जाता है। ओंकारनाथ जिनका बचपन आश्रम में श्री चरणों में व्यतीत हुवा आज कल शिकोहावाद में प्रोफेसर हैं। माई द्रोपदी जो ने गोशाला का प्रमुख द्वार बनवाया।

सेठ जमनालाल जी बजाज का महाराज जी व आश्रम से घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था। वे समय २ पर आश्रम में आते रहते थे और आश्रम को उन्नति के लिए अपनी नेक सलाह भी दिया करते थे। बम्बई के सेठ रामनारायण रुईया ने महिलाओं की शिक्षा के लिए एक ट्रस्ट बनाया था। सेठ जमनालाल बजाज ने उस ट्रस्ट की ओर से बड़ी उमर की बहनों के लिए महिला मण्डल नाम की एक संस्था खोला। उन्होंने इस प्रयोजन के लिये एक मकान भी आश्रम में बनवाया। सेठ जमनालाल जी की धर्मपत्नि आदरणीया जानकीदेवी, उनकी सुपुत्री बहन मदालसादेवी, सेठ जी की भगिनी सेठ रामनारायण रुईया की पुत्री शान्तादेवी और जमनालाल जी के भतीजे राधाकृष्ण बजाज चिरकाल तक आश्रम में ही रहे। उन्हीं दिनों में सेठ जमनालाल जी बजाज के साथ सेठ रामकृष्ण डालमिया जी एक बार महाराज जी के दर्शनार्थ आये। वे कुछ दिन तक उनके सत्संग में रहे। उन्होंने भी अपने रहने के लिये आश्रम में एक मकान बनवा लिया। वे अपनी माताजी, धर्मपत्नि और छोटे भाई जयदयाल जी डालमिया सहित चिरकाल तक श्री महाराज जी के चरणों में रहे। डालमिया जी की पुत्री रमाबाई भी सेठ जमनालालजी की पुत्री मंदालसाबाई के साथ आश्रम में ही

रहती थीं। उन्होंने अपनी प्रारम्भिक दसवीं तक की शिक्षा आश्रम में ही श्री महाराज जी के चरणों में रह कर प्राप्त की। कुछ काल श्री महाराज जी के चरणों में रहने के पश्चात् डालमिया परिवार यहां से दानापुर चला गया।

बहोड़ा के पण्डित जयनारायण भार्गव श्री महाराज जी के श्रद्धालु भक्तों में से थे। उनके एक पुत्र पूर्णानन्द जी ने श्री महाराज जी के सत्संग में आकर संन्यास ले लिया था। एक बार पं० जयनारायण की आर्थिक व्यवस्था कुछ ढीली हो गई थी। उन्होंने कोयले का व्यापार आरम्भ किया और अपने मन में संकल्प किया कि इसमें जो नफा होगा उसका चौथाई भाग मैं श्री महाराज जी के चरणों में भेंट करूंगा। उनको इस व्यापार में काफी लाभ हुआ और महाराज जी की आज्ञा से उन्होंने लगभग २० हजार की लागत आश्रम में एक मकान और शिवजी का मन्दिर बनवा दिया। उनके पुत्र जयदयाल जी भार्गव, सोहनलाल भार्गव और बाबूलाल भार्गव चिरकाल श्री महाराज जी की सेवा में रहे। म० पूर्णानन्द जी के एक सत्संगी भक्त थे। उन्होंने महाराज जी के दर्शन किये। उन्होंने संन्यास ले लिया और अपना नाम रामानन्द रख कर अपना जीवन श्री चरणों में लगा दिया। जब श्री महाराज जी कभी २ जोन्द जाया करते थे। उनके सत्संग में पं० पन्नीलाल आया करते थे। उनके पास लक्ष्मण नाम का एक ब्रह्माण का लड़का रहता था। वह एक बार आश्रम में आया तो सत्संग से इतना प्रभावित हुवा कि अपना जीवन श्री चरणों के ही अर्पण कर दिया। म० रामानन्द जिनको

हम राम कहते थे और यह लक्ष्मण श्री महाराज जो के विशेष सेवक थे। श्री महाराज जी के अगूठे की आंटन कुछ ज्यादा सख्त हो गई थी और चलने फिरने में तकलोफ देती थी। अत: शंकरदेव ने उनके वास्ते एक गाड़ी चार पहिये की बनवादी। यह पीछे से धकेल कर चलाई जाती थी। इस गाड़ी पर राम और लक्ष्मण की जोड़ी ही मुख्य रूप से रहती थी। वे दोनों ही इस गाड़ी को पीछे से धकेल कर चलाया करते थे।

जिन दिनों आश्रम में तालाब की खुदाई होती थी रामपुरे का डेडा नाम का एक चमार श्री महाराज जी के पास आकर हाथ जोड कर खड़ा हो गया। श्री महाराज जी ने कारण पूछा तो उसने बताया कि मेरे दो स्त्रियां हैं परन्तु सन्तान नहीं होती है। महाराज जी ने सहज स्वभाव से कहा कि इस तालाब में नियम से रोज एक वर्ष तक मिट्टी निकाल लड़का हो जायेगा। उसने और उसकी स्त्री ने नियम से मिट्टी निकालनी शुरू करदी। एक वर्ष के पश्चात् उसके एक लड़का हुवा जिसका नाम उसने सेवा रक्खा।

दिल्ली के सेठ मथराप्रसाद की फर्म के साझीदार ला० हन्नूमल एक बार आश्रम में आये। उन्होंने दूसरा विवाह किया था परन्तु उससे भी कोई सन्तान नहीं हुई। हन्नूमल ने अपना दुख श्री महाराज जी से निवेदन किया। महाराज जी ने एक वर्ष ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके नित्य महादेव की पूजा का उपदेश दिया। महाराज जी की कृपा से समय पर उनके जब पहला पुत्र हुवा तो उन्होंने उसका नाम महादेव रक्खा और वे आश्रम में ही रहने लग गये। एक

मकान भी उन्होंने बनवाया और महादेव जी की पूजा के लिए एक महादेव का मन्दिर भी बनवाया।

दिल्ली में राव सहाब के मित्र श्री रामचन्द्र ठुकराल सब-जज थे। उन्होंने राव सहाब से श्री महाराज जी के बारे में सुना। उनकी महाराजजी के दर्शन करने की उत्कट इच्छा हुई और वे एक बार राव सहाब के साथ आश्रम आये। पहली ही बार जब उन्होंने श्री महाराजजी के दर्शन किये और उनका सत्संग किया तो वे महाराजजी के मुरीद हो गये। उन्हें जब भी अवकाश मिलता वे महाराजजी की सेवा में आकर सत्संग किया करते। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी गुरुदेवी उनकी पुत्री लक्ष्मी और पुत्र प्रेमनाथ भी आया करते थे। एक बार बातों ही बातों में महाराज जी कहने लगे की यह प्रेम तो रामचन्द्र जज से भी बड़ा जज बनेगा। और हुवा भी यही ही प्रेमनाथ शीघ्र ही वकालत पास करके पहले सब-जज और तरक्की करते २ सेशन जज हो गये। उन्होंने कोठी भी बनवाई। प्रेमनाथ ठुकराल ने अपनी माता की और बहन की यादगार में मातृ मन्दिर बनवाया।

जज सहाब के आग्रह पर महाराजजी दिल्ली एक बार दिल्ली उनकी कोठी पर कुछ दिन ठहरे। उन दिनों व्यास गद्दी के राधा स्वामी मत के महाराज सांवलदास भी दिल्ली भी आये हुवे थे। उन्होंने जब श्री महाराज जी के बारे में सुना तो वे महाराजजी के दर्शनार्थ जज सहाब की कोठी पर आये। सत्संग वार्ता के पश्चात् उन्होंने कहा कि यह तो सिद्ध महापुरुष हैं। मुझे भी

श्री महाराजजी दिल्ली अपने साथ ले गये थे। कोठी पर जब भी महाराजजी को अवकाश मिलता तब उन्होंने भक्ति, ज्ञान और योग के सम्बन्ध में तीन लेख मुझे लिखवाये। वे तीनों लेख अलग पुस्तक रूप में छपे हैं और आश्रम से मिल सकते हैं।

बख्शी चाचनशाह उन दिनों में दिल्ली में इनकम टैक्स आफीसर थे। उन्हें भी राव सहाब के द्वारा श्री महाराजजी का पता लगा। यद्यपि वे राधा स्वामी मत के थे। परन्तु श्री महाराजजी के दर्शन करके और उनका उपदेश सुनकर उनको बड़ा ही आनन्द आया। उन्होंने अपनी धर्मपत्नी और कन्याओं को आश्रम में श्री महाराजजी के सत्संग में भेज दिया। कौशल्या, दुलारो आदि उनकी लड़कियों ने आश्रम में ही अपनी शिक्षा प्राप्त की।

एक बार राव सहाब, भक्त जी, जज सहाब और बख्शी जी ने अपने आपस में विचार किया कि आश्रम के लिए कुछ पैसा जमा कर दिया जाये तो ठीक रहेगा। ऐसा विचार करके वे चन्दा करने के लिए दिल्ली चले गये। वहां जाकर चार पांच दिन में उन्होंने लगभग बीस हजार रुपया इकट्ठा कर लिया। आश्रम आकर यह सूचना उन्होंने महाराज जी को दी। उन्होंने पैसा जमा करने की बात को ठीक नहीं समझा और कहा कि संस्थाओं में पैसा झगड़े का मुख्य कारण होता है। आश्रम में मकान बन गये, वृक्ष लग गये, तालाब में भी पक्के घाट कुछ तो हो गये हैं और हो जावेंगे। यदि यहां के रहने वाले ऐसी जगह पर रह कर परिश्रम से अपना गुजारा भी नहीं कर सकें तो इससे ज्यादा बुराई और क्या होगी। यह कह कर

उन्होंने वह सारा रुपया शंकरदेव को बुला कर दिला दिया और आज्ञा दी कि इस रुपये से तालाब के उत्तर और दक्षिण के जो दो बड़े घाट बनने शेष हैं बना दिये जावें। इस प्रकार उस जमा किये हुवे धन को महाराज जी ने तुरन्त खर्च करा दिया।

महाराज जी जिस रावटी में रहते थे राव सहाब ने देखा कि उसमें उनको कुछ भी सुविधा नहीं है। यद्यपि महाराज जी ने इस बारे में कभी कुछ भी नहीं कहा परन्तु राव सहाब ने उनको असुविधा देख कर रावटी के स्थान पर एक कमरा बनवा दिया।

एक बार म० रामानन्द (म० रामपत) को आज्ञा हुई कि जाओ इस बार वन में विचरण करके आओ। आज्ञा पकार वे बन में विचरणार्थ चले गये। वन में जगह २ के खाती काम कर रहे थे। उन्होंने सैंकड़ों कड़ी महात्माजी को भेंट की। उन कड़ियों से महाराजजी कमरे के नीचे का चारों ओर का छप्पर हटा कर पक्की छत बनवा दी गई। इसी प्रकार शेष कड़ियों से पहले जिस मकान में महाराज जी रहते थे उसके चारों ओर के छप्पर भी हटा कर पक्की छत बना दो गई। इसी प्रकार एक बार महाराज जी ने वृक्षों की पौद लाने की आज्ञा दी। वे दिल्ली कई नर्सरियों में गये और वहां भिन्न २ प्रकार के सैंकड़ों वृक्षों की पौद मांग कर ले आये जिनको श्री महाराज जी ने आश्रम में लगवा दिया। एक बार श्री महाराज जो ने उनको अन्न लाने के वास्ते कहा। आज्ञा पाते ही दिलसुख (म० दर्शनानन्द) की सहायता से सैंकड़ों मन अन्न मांग कर ले आये।

एक बार श्री महाराज जी दादरी जंगल में छतरियों में ठहरे। उन दिनों दादरी में प्लेग हो रही थी। श्री महाराज जी ने अत लोगों की सेवा के लिये एक सेवा समिति बनवाई। उस समिति ने रोगियों की बड़े ही प्रेम से सेवा की। यद्यपि यह बीमारी छूत की होती है परन्तु समिति के किसी भी सेवक को यह बीमारी नहीं हुई।

एक बार महाराजजी जीन्द के पास राम राम में ठहरे। वहां ग्राम से बाहर एक मकान में चार मास ठहरे। एक भक्त नित्य एक घड़ा पानी और चार मिस्सो रोटी किवाड़ खुला कर रख आया करता था। फिर किवाड़ बन्द कर लेते थे। इस प्रकार चार मास तक अकेले उस मकान में साधन किया।

एक बार श्री महाराज जी नरवाना स्टेशन पर उतरे। वहां स्टेशन पर बा. कर्तारामं को उनके दर्शन हुवे। वे उन्हें अपने मकान पर ले आये और ठहने के वास्ते एक अलग कमरा दे दिया। कुछ दिन श्री महाराजजी वहां ठहरे। बा. कर्ताराम अपनी ड्यूटी से रात को आया करते थे। एक दिन जब वे आये तो उन्होंने देखा कि श्री महाराज जी निर्जीव की भान्ति लेटे हुवे हैं। उनको बड़ा फिकर हुवा कि यह क्या हो गया। और इसी चिन्ता में वे रात भर बैठे रहे। परन्तु प्रातः चार बजे जब श्री महाराज जी श्लोक बोलने लगे तब उनकी महान चिन्ता दूर हुई।

एक बार महाराज जी सरदार धर्मसिंह की कोठी में ठहरे हुवे थे। वहा से ला० बनवारीलाल अपने मकान में ले आये। उनका लड़का बालकृष्ण सख्त बीमार था। बहुत इलाज हुवा मगर ज्वर

नहीं उतरा। ला० बनवारीलाल ने श्री महाराज जी से बीमारी की बाबत कहा। श्री महाराज जी तो भक्तों पर सहज ही दया किया करते थे। उन्होंने आज्ञा दी कि गर्म पानी में नमक डालकर कई बार पिलाओ और के कराओ। पहले तो बालकृष्ण ने नहीं माना। परन्तु फिर श्रद्धा से यह ही उपाय किया तो इसी उपचार से कई मास का ज्वर दो तीन दिन में ठीक हो गया। ला० बनवारीलाल ने इस उपलक्ष्य में कुछ करना चाह तो आज्ञा हुई कि सन्त महात्माओं को भोजन कराओ। उन्होंने सैंकड़ों सन्त महात्माओं के भोजन का प्रबन्ध किया। जिस समय भोजन हो रहा था कि बड़ा भारी भूचाल आया और मकान हिलने लगा। सब भय भीत हो गये तो कीर्तन की आज्ञा हुई। जोर २ से कीर्तन होने लगा। इधर भूकम्प का छटका शान्त हो गया। इस भूकम्प ने बिहार में बड़ा भारी विनाश किया था। बिहार में ला० बनवारीलाल के १५ जगह लोहे के कारखाने थे। मगर किसी में भी कोई हानि नहीं हुई।

एक बार श्री महाराज जी संगरूर में ठहरे हुवे थे। उन दिनों सरदार शमशेरसिंह जीन्द महाराज के बड़े वजीर थे। वे और महाराज के और मुसाहिब सत्संग में आया करते थे। यह समाचार जब महाराज को विदित हुवा तो वे और उनकी विदेशी पत्नि भी एक दिन सत्संग में आए और उपदेश सुन कर बहुत ही प्रभावित हुवे। महाराज के एक मुसलिम मुसाहिब तो अपनी एक बार की नमाज ही महाराज जी के पलंग के पास पढ़ा करते थे। एक दिन प्रातः काल श्री महाराज जी कागज पर भगवान् के नाम लिखने लगे।

कुछ नाम लिखे और जब उनको पढ़ने लगे तो नीचे लिखा भजन हो गया।

ओ३म् निरंजनं दुख भंजनं ररंकार ओंकार।
सत्य पुरुष सोऽहं तुही अलखं सर्वाधार॥

ओ३म् निरंजन ररंकार प्रभु सोऽहं सत्य नाम करतार।
अच्युत गुरु गोविन्द दातार परमानन्द रूप निरधार॥१॥
एक अखण्ड ज्ञान भण्डार तुमरी ज्योति का उजियार।
मैं, मैं, मैं पन सर्वाधार नेति नेति कर वेद उचार॥२॥
एक आत्मा अपरम्पार शंकर ब्रह्म सर्व का सार।
ओत प्रोत सब में निरंकार जीवन प्राण आप ओंकार॥३॥
हरि नारायण अग्नि तार देव देव मैं करहूँ पुकार।
कृष्णानन्ताऽचलहं गोड़ हुँ फट अल्ला सर्व पसार॥४॥
बिनवो तुमको बारम्बार प्रीतम प्यार करो उद्धार।
तद्धन गणपति नैनमझार होवे अनन्त तुम्हें नमस्कार॥५॥

यह पद श्री महाराज जी समा जाने के पश्चात् श्री भगवद्भक्ति आश्रम की दैनिक प्रार्थना में सम्मिलित कर दिया गया।

श्रीमहाराजजी जोन्द महाराज के एक मुसाहिब म. हरचन्दसिंह की कोठी में ठहरे हुवे थे। उन्होंने वहां से कश्मीर जाने का विचार किया। स. हरचन्दसिंह जी ने अपना एक आदमी रामप्रताप कुछ खर्चा देकर साथ भेज दिया। कश्मीर जाकर वहां राजा के रामबाग में ठहर गये। रामप्रताप के पास खर्चा कम रह गया। महाराज जी

को तो इसकी क्या चिन्ता थी। घूमते घूमते एक स्थान पर पहुँचे। वहां एक पण्डित की उपनिषद पर कथा हो रही थी। पण्डित छान्दोग्य उपनिषद के 'यो वै भूमा तत्सुखं' की व्याख्या कर रहे थे। उनकी व्याख्या श्री महाराज जी को ठीक नहीं लगी। और स्वयं व्याख्या करना शुरू कर दिया। उनके उस उपदेश का पण्डित और श्रोताओं पर बड़ा असर पड़ा। फिर तो क्या था लोग सत्संग में आने लग गये। नित्य ही अनुनय विनय करके अपने घरों पर ले जा कर भोजन कराते और सत्संग का लाभ उठाते। एक बार महाराज जी एक भक्त के यहां से भोजन करके आ रहे थे। मार्ग में पण्डित की सभा का कोई सत्संगी मिल गया। उसने एक रुपया भेंट का अर्पण करना चाहा। महाराज जी तो रुपये पैसे को छूते ही नहीं थे। जब उन्होंने नहीं लिया तो एक मतीरा भेंट कर दिया। उसको लेकर महाराज जी रामबाग में आये। रामप्रताप ने जब सुना कि रुपया न लेकर इतना बड़ा मतीरा ले आये तो उसे कुछ ख्याल हुवा। महाराज जी उसकी ऐसी नादानी देखकर हंस पड़े।

एक बार जीन्द में श्रीमहाराजजी बनखण्डी महादेव पर ठहरे हुवे थे। पास ही एक बड़ा भारी सरकारी वन था। सायंकाल उसमें घूमने चले जाया करते थे। सत्संगी लोग भी तलाश करते करते वहां ही पहुँच जाया करते थे और रात के ११, १२ बजे तक खूब सत्संग होता। एक रात इसी प्रकार सत्संग हो रहा था। रात के १० बज गये थे। सत्संग में बैठे एक भक्त को सम्बोधित करके उसको आज्ञा दी कि वह शीघ्र अपने घर चला जाये। यद्यपि वह सत्संग को

छोड़कर घर जाना नहीं चाहता था। परन्तु महाराज जी की आज्ञा से घर आया तो उसने देखा कि उसकी स्त्री प्रसव पीड़ा से बहुत ही दुःखी हो रही थी। उस भक्त ने मन ही मन में महाराज जी का बहुत उपकार माना।

एक बार श्री महाराज जी के पास मुन्शी रूप जी तथा कई अन्य भक्त बैठे थे। उपदेश हो रहा था तब उन्होंने एक कहानी सुनाई।

श्री महाराज जी ज्योतिष शास्त्र के गणित को तो मानते थे। परन्तु फलित को नहीं मानते थे। उन्होंने उपदेश में एक दिन इस बारे में एक कहानी सुनाई कि एक बार किसी ज्योतिषी ने एक राजा का हाथ देखा। हाथ देखकर ज्योतिषी जी चिन्ता मग्न हो गये। राजा ने जब कारण पूछा तो ज्योतिषी जी ने कहा कि महाराज आपके हाथ की रेखा स्पष्ट बता रही है कि आपका यह शरीर एक मास में समाप्त हो जावेगा। यह सुनकर राजा को बड़ी चिन्ता हुई। उनका खाना पीना छुट गया। शरीर की चिन्ता के कारण रोज २ क्षीण होने लगा। यह देखकर एक दिन मन्त्री ने कारण पूछा। पहले तो राजा ने कुछ नहीं बताया परन्तु जब मन्त्री ने बहुत आग्रह किया तो ज्योतिषी की कही हुई सब बातें कह दीं। मन्त्री बहुत बुद्धिमान था। उन्होंने ज्योतिषीजी को तुरन्त बुला भेजा। जब ज्योतिषीजी दरबार में आये तो मन्त्री ने पुनः राजा का हाथ देखने को कहा। हाथ देखकर पण्डित जी ने पहले कही हुई बात फिर दोराही। मन्त्री ने पुनः कहा कि महाराज अच्छी तरह हिसाब लगाकर बताओ। मुझे गलत लगता है कि कहीं हिसाब में भूल हो। परन्तु ज्योतिषी ने फिर

वही बात कही। तब मन्त्री ने ज्योतिषी जी से उनकी अपनी उमर के बारे में प्रश्न पूछा। ज्योतिषी ने झट से उत्तर दिया कि बीस वर्ष तक संसार की कोई भी शक्ति मुझे नहीं मार सकती। मन्त्री जी ने पुनः ठीक २ हिसाब लगाकर बताने को कहा। परन्तु ज्योतिषी ने फिर वही शब्द कहे। यह सुनकर मन्त्री ने म्यान से तलवार निकाल कर ज्योतिषी जी की गर्दन उड़ा दी और राजा से कहा महाराज यह सब पाखण्ड है। यह तो अभी २ कह रहा था कि संसार की कोई भी शक्ति मुझे बीस वर्ष तक नहीं मार सकती। अब यह कैसे धराशायी पड़ा है। इस प्रकार राजा का भ्रम दूर हुवा।

एक बार श्री महाराज जी ऊपर रावटी में उपनिषद् की पुस्तक देख रहे थे। उनके पैर के अंगूठे को आंटन को कभी २ वे गर्म पानी में पैर रख कर नरम कर लिया करते थे। एक दिन उन्होंने अंगूठे को सेकने के लिए गर्म पानी लाने की मुझे आज्ञा दी। मैं एक बड़े भगूने में खौलता हुवा गर्म पानी करके ले आया और उनके पलंग के पास रख दिया। श्री महाराज जी पुस्तक पढ़ रहे थे। पानी क्योंकि बहुत गर्म था। मैं बिना महाराज जी से कुछ कहे थोड़ी देर के वास्ते इसलिए नीचे चला गया कि पानी कुछ ठण्डा हो जावे तो पैर सेक दूंगा। श्री महाराज जी ने पुस्तक पढ़ते २ ही अपना पैर उस तेज गर्म पानी में रख दिया और आप पुस्तक पढ़ते रहे। जब मैं थोड़ी देर में वापिस आया तो यह देख कर कि महाराजजी ने खौलते पानी में अपना पैर डाल रक्खा है भौचक्का सा रह गया। और निवेदन किया कि महाराज जी पानी तो बहुत ही गर्म था।

यह सुनकर महाराज जी ने पानी में जब पैर बाहर निकाला तो जितना पैर पानी में था उस पर छाला पड़ा हुवा है। उस समय मेरी अपनी इस महान मूर्खता पर एक अजीब ही अवस्था थी। परन्तु श्री महाराज जी वैसे ही पुस्तक पढ़ते रहे। उस दिन शनिवार था और हर शनिवार को दिल्ली के प्रसिद्ध दांत के डाक्टर रघुनाथ महाराजजी के दर्शनार्थ आया करते थे। जब वे आये तो उन्होंने दवा वगैर मंगा कर मलहम पट्टी की। हमारे पैर में या कहो भी एक जरा सा भी कांटा लग जाता है तो हम चीख उठते हैं। परन्तु इतना पैर जल जाने पर भी उनको जरा भी आभास नहीं हुवा क्योंकि उनको देहाध्यास था ही नहीं। वे तो जल से कमल की भान्ति संसार से विरक्त थे। सर्वदा ब्रह्म में तल्लीन रहने के कारण शरीर के सुख दुखों से सर्वदा रहित रहते थे। हम कई बार देखा करते थे। चलते २ उनके पैरों से जूती निकल जाती थी और उनको पता नहीं लगता था। बहुत दूर निकल जाने पर जब हमारी निगाह पैरों पर जाती तब हम जूती लाकर पहनाते थे। शरीर पर वस्त्र भी लोकाचर के वास्ते रखते थे। गर्मी सर्दी सदा एक लम्बा कुड़ता और ऊपर एक चद्दर। उनके कुर्ता का गला खुला रहता था और वे कभी बटन नहीं लगाते थे।

गौरक्षा की ओर श्री महाराजजी का विशेष ध्यान था। वे कहा करते थे कि गौ रक्षा के केवल दो ही साधन हैं। प्रथम तो गौवों के चरने के वास्ते पर्याप्त गोचर भूमी होनी चाहिए और दूसरे गोवध अधिकतर चमड़े के लोभ से मारी जाती है। इसलिये अच्छे नसल के

साण्ड छोड़े जावें और इस प्रकार गौवों की नसल वृद्धि करके इनको ऐसा बना दिया जाय कि जिन्दा गौ की कीमत इतनी हो जाय कि वह फिर चमड़े के लोभ से मारी न जाव। यदि जिन्दा गौ की कीमत ढाई सौ तीन सौ हो कटने पर साठ सत्तर का ही मांस, चमड़ा और हड्डी बिके तो फिर गौ को कौन मारेगा। वे सर्वदा यह ही कहा करते थे कि यदि गौ रक्षा करनी है तो इनकी नसल का सुधार करें।

इसके अतिरिक्त इधर जब २ कहत पड़ा श्री महाराज जी ने इलाके की नसल को कायम रखने के लिए कहत के समय में गायों को इकट्ठा करके सुकाल की जगह भिजवा दिया करते थे। उन्होंने महामना मालवी जी का भी ध्यान इधर आकर्षित किया। और एक सभा राव सहाब की नई दिल्ली की कोठी में कायम की गई। गोस्वामी गणेशदत्त जी इस सभा के जनरल सेक्रेट्री बनाये गये। प्रसिद्ध गौ भक्त श्री हासानन्द जी भी बहुधा गोरक्षा के सम्बन्ध में श्री महाराजजी से सलाह करने आया करते थे।

श्री महाराज जी पैर के अगूठे में आटन के कारण चल फिर कम सकते थे। अतः शकरदेव (शकरानन्द) ने चार पहिये की एक गाड़ी बनवाई जिसको पीछे से धकेल कर चलाया करते थे। एक बार महाराज जी उस गाडी में बठ कर आश्रम में घूम रहे थे कि एक जांट का टहनी उनको आंख में लग गई जिसके लगने से उनकी आंख में मोतिया उतर आया। उन दिनों जगत प्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक राय बहादुर डाक्टर मथरादास जी मोगे में काम करते थे। राव सहाब ने उनको बुलवा कर महाराज जी की आंख दिख

लाई । डाक्टर सहाब ने आंख देखकर मोतिया बताया और आपरेशन करने की आज्ञा मांगी। महाराज जी की आज्ञा से डाक्टर सहाब ने आंख का आप्रेशन कर दिया। उस समय सात और भी नेत्र रोगी आ गये और उनका भी आप्रेशन हो गया। आठ दिन के पीछे पट्टी खोली गई। सब की आंखें बहुत अच्छी बन गईं। परन्तु श्री महाराज जी को केवल अपनी ही आंख नहीं बनवानी थी। उनको तो उन हजारों अन्धों का खयाल था जो अपने घरों में बिना चिकित्सा के अन्धे पड़े थे। पट्टी खुलने के अगले ही दिन महाराज जी की आंख में पीड़ा हो गई। राव सहाब ने भक्त नन्दकिशोर जी को डाक्टर सहाब को लाने के लिए मोगा भेजा। मोगा जाते समय भक्त जी दिल्ली में ला. बनवारीलाल को कह गये कि डाक्टर सराफ को भी भेज दें। महाराज जी की आंख में पीड़ा है और भक्त जी मोगे चले गये और आंख में पीड़ा की बात बताई। डाक्टर साहब को तो किसी कारण से छुट्टी नहीं मिला अतः उन्होंने डाक्टर वजीरचन्द को साथ भेज दिया। सायंकाल को जब भक्त जी मोगा से चलने लगे तो उन्होंने मन में संकल्प किया कि यदि महाराज जी की आंख में आराम हो जाय तो मैं चक्षुदान यज्ञ करा कर हजारों अन्धों की आंख बनवाऊंगा। इस कार्य के लिये डाक्टर सहाब ने बिना कोई फीस लिए समय देने का वचन दिया। भक्त जी डाक्टर वजीरचन्द को साथ लेकर आश्रम आये। इधर ला. बनवारीलाल ने डाक्टर सराफ को दिल्ली से भेजा। दोनों डाक्टर संयोग वश साथ ही आश्रम आये। परन्तु श्री महाराज जी की आंख की पीड़ा तो उसी सायंकाल को दूर हो गई जिस सायंकाल

जब भक्त जी ने पूछा कि महाराज जी को आंख में कब पीड़ा शान्त हुई तो मैंने उत्तर दिया कि रात को ८ बजे शान्त हुई था। वह समय वही था जब भक्त जो ने ये संकल्प किया था कि महाराजजो को आंख में पीडा शान्त हो जाय तो हम हजारों अन्धों की आंखें बनायेंगे और भक्तजी ने हजारों अन्धों की आंख बनवाने का संकल्प किया था। उनकी आंख में उन हजारों मोतिया विन्द के दुखी लोगों की पीड़ा थी जो उनकी पीड़ा को दूर करने के शुभ सकल्प से तुरन्त शान्त हो गई। राव सहाब और भक्त जो ने इस सकल्प की पूर्ति के लिए विचार किया। और डाक्टर सहाब से समय मांग कर १५ दिन के भीतर ही एक कैम्प रेवाड़ी में करने की योजना बनाई। नियत समय पर कैम्प हुवा और डाक्टर सहाब ने ढाई सौ से ज्यादा लोगों के आप्रेशन किये। स्थान की कमी के कारण बहुत से रोगी जिनका इलाज हो सकता था रह गये। अत: इस कैम्प को समाप्ति के तुरन्त बाद दूसरा कैम्प किया गया और फिर करीब पौने दो सौ रोगियों के आप्रेशन डाक्टर सहाब ने कर दिये। क्योंकि डाक्टर सहाब को मोतिया के आप्रेशन करने में लाखों मोतिया के आप्रेशन करने के कारण निहायत कमाल हासिल है। इसलिए एक दो प्रतिशत को छोड़कर बाकी सब की आंखें बन गई थी। इस सफलता से प्रभावित होकर महाराज जी के आदेशानुसार एक अपर इण्डिया ब्लाइण्ड रिलीफ ऐसोशियेशन की स्थापना राव सहाब की दिल्ली स्थित कोठी में कर दी गई। इस सभा ने दिल्ली, मथुरा, गोवर्धन, देहरादून, मंसूरी आदि कई स्थानों में कैम्प करा कर हजारों मोतिया के रोगियों

को आंखें प्रदान की। एक कैम्प शिमले में महाराज जी ने कराया और उस कैम्प में तत्कालीन वायसराय की धर्मपत्नि लेडी विलिंगडन भी पधारी। उन्होंने कैम्प के काम की बड़ा सराहना की और श्री महाराज जी से आशीर्वाद प्राप्त किया और लेडी विलिंगडन के नाम से 'लेडीविलिंगडन ब्लाइण्ड रिलीफ एसोसियेशन' नाम की एक संस्था शिमले में स्थापित की गई। इस संस्था ने कुरुक्षेत्र आदि कई स्थानों में कैम्प किये। इस नेक काम को स्थायित्व देने के लिए बाद में भक्त जा ने कुमारपाल, सूरजदेवी, कमलादेवी और भूमानन्द आदि की सहायता से सन्त परमानन्द ब्लाइण्ड रिलीफ नाम की एक संस्था स्थापित की। पहले करोल बाग में एक मकान किराये लेकर और आस पास तम्बू लगाकर ये काम शुरू किया। बढ़ते २ तीन चार और मकान किराये पर लिए और तम्बू हटा दिए गए और नेत्र रोगियों को बिना फीस आदि के मुफ्त इलाज होने लगा। यह सस्था वर्ष में कई कैम्प करती है जिसमें हजारों आप्रेशन प्रति वर्ष होते हैं। दिल्ली नगर में तीन शाखायें इस संस्था की अलीपुर मार्ग, करोल बाग और जमना बाजार में काम करती हैं श्री महाराज जी के कोई एक पुराने सत्संगी रा. ब. नारायणदास जी राय बहादर गयाप्रसाद जी आदि की देख रेख में यह संस्था बड़ा अच्छा काम कर रही है।

सन् 23, 24 की बात है कि रेवाड़ी में मस्जिद के सामने बाजा बन्द हो गया था और हिन्दुओं ने विरोध में रामलीला नहीं निकालने का निश्चय किया था। श्री महाराज जी को जब मालूम

हुआ कि रामलीला बन्द हो गई तो किसी प्रकार का साधन नहीं होते हुए भी महाराज जी ने आज्ञा दी कि आश्रम में रामलीला होनी चाहिए। उस साल तो बिना वस्त्र तथा मुकुटादि के रामलीला करी गई। अगले साल कुछ चन्दा किया और उस चन्दे से मुकुट व कपड़े बना लिये। फिर अच्छे सुन्दर ढंग से साज सज्जा के रामलीला की गई। अच्छे २ स्थल जो बालमीकि व तुलसीकृत तथा राधेश्याम की रामायण में थे उन्हें संग्रह कर के लेखक ने सब पार्ट इकट्ठे किये। श्री महाराज जी की आज्ञा से लड़कियां तुलसीकृत रामायण से पाठ बोलती थीं और साथ २ पात्र बोलते व करते जाते थे। वह रामलीला इतनी प्रसिद्ध हुई कि 10, 12 हजार आदमी रात को देखने आते थे बिलकुल शान्तिपूर्वक रुचि से रामलीला का आनन्द लेते थे।

एक बार श्री महाराज जी शिमले में थे और आश्रमवासियों ने महाराज जी के पास पत्र डाला कि हम रामलीला नहीं करेंगे। श्री महाराज जी को यह सुनकर बहुत खेद हुआ और मुझे शिमले से भेजा तथा कहा कि रामलीला अवश्य होनी चाहिए। मैंने आश्रम आकर तीज को रामलीला शुरु करायी। महाराज जी पुरानी प्रथाओं को फिर से प्रचलित करना चाहते थे। इसलिए ये प्राचीन प्रथा रामलीला को करने में रुचि रखते थे। ये रामलीला श्री महाराज जी के शरीर पूरा होने के बाद सन् 1947 तक भी बली प्रकार होती रही। जब मुसलमान यहां से चले गये तब मस्जिद के सामने बाजा बजाने का प्रतिबन्ध न रहा तब 1948 में रेवाड़ी

में रामलीला आरम्भ हो गई। क्योंकि देहातों में भी कई जगह तथा रेवाड़ी में भी कई जगह रामलीला शुरू हो गई थी अतः आश्रम ने रामलीला बन्द कर दी।

स्वधाम यात्रा:—

श्री महाराज जी कई बार रामपुरा के भीवां भगत से कहा करते थे कि तुम रथ में हमें कहीं घुमा लाओ। मेरे को मालूम नहीं कि महाराज जी कहां जाना चाहते हैं मैंने आश्चर्य से पूछा कि महाराज जी का विचार कहां जाने का है। तब उन्होंने कहा कि होडल से हम नाव में चलेंगे और फिर आगे किसी अन्य स्थान पर जायेंगे। मैंने पूछा कि नाव पर चढ़ने पर रथ छोड़ दोगे तो उन्होंने कहा कि रथ भी नाव पर चढ़ाकर ले जाया जा सकता है। मगर घूमने जाने से पहले ही इस घटना के थोड़े समय बाद भीवां भगत का स्वर्गवास हो गया।

श्री महाराज जी कई बार दिल्ली तथा इधर उधर घूमने जाया करते थे। हम सब सत्संगियों ने विचार किया कि महाराज जी के लिए एक कार खरीद ली जाये तो अच्छा रहेगा। भक्ताणी (श्रीमती भक्तनन्दकिशोर मोरपंख वाला) ने इस काम के लिए कुछ जेवर बेचे। मेरे पास भी चढ़ावे के कुछ रुपये थे। और मैं तथा म. कृष्णानन्द जी दिल्ली गये और वहां सत्सगी वर्ग से कुछ चन्दा जमा किया। इस प्रकार चार हजार रु० इकट्ठे हुए। इसके बाद प्यारेलाल एण्ड संस दिल्ली के मालिक प्यारेलाल जी

जो श्री महाराज जी के भक्त थे तथा वह कार विक्रेता भी था। हमने एक गाड़ी क्राइसलर पसन्द की तो उन्होंने कहा इसका मूल्य साढे पांच हजार रु० है। हमने उनसे कहा कि हमारे पास केवल चार हजार रु० हैं। तब उन्होंने श्रद्धापूर्वक कहा कि महाराज जी के लिए गाड़ी चाहिए इसमें डेढ हजार मेरी ओर से समझना। और गाड़ी चार हजार में ही महाराज जी के अर्पण कर दो।

राव साहब के पास एक कार पहले ही थी। मैंने कार चलाना उस गाड़ी के द्वारा एक दिन में ही सीख लिया था। जब महाराज जी को मालुम हुआ कि भूमानन्द ने मोटर चलानी सीख ली है तो उन्होंने कहा चल खोरी आश्रम में चलेंगे। मैंने उत्साहपूर्वक खोरी आश्रम में चलने की हां भी भरो। यद्यपि मुझे एक ही दिन का अभ्यास था तथा रास्ता कच्चा था परन्तु श्री महाराज जी की कृपा से खोरी आश्रम ले गया। जब महाराज जी की मोटर आई तो एक रामखिलाड़ी नामक ड्राइवर मुझे मोटर सिखाने के लिए रखा। वह एक महीने तक मुझे अभ्यास कराता रहा।

एक बार श्री महाराज जी आश्रम से नयी दिल्ली राव साहब की कोठी में गये। केशवदेव, लछमन, हरिदास, गौरीशंकर साथ गये। कोठी में भोजन किया और दोपहर बाद आज्ञा दी कि चलो घूमने चलेंगे हम सब फौरन तैयार हो गये। महाराज जी ने यमुना के पुल की ओर इशारा किया और स[illegible] आगे अलीगढ़ वाली सड़क पर चलने का कहा। फिर सोमना से आगे चले। और जट्टारी से कच्चे रास्ते हो लिए। आगे एक नाला आया दिन छुप चुका था मेरी

हिम्मत नहीं हुई कि नाले में से मोटर ले जाऊं। महाराज जी ने कहा कि अच्छी बात अब वापस चलो। बरसात का सा मोसम था। रात को दस बजे सड़क के किनारे एक मन्दिर में ठहरे वहां बहुत मच्छर थे इसलिए महाराज जी ने कहा कि कोठी में ही चलो। हम सब रात को एक बजे कोठी में पहुँच गये।

कई मास पश्चात् एक बार राव साहब के साथ महाराज जी कोठी में ठहरे और भोजन करने के बाद महाराज जी और राव साहब और मैं फिर उसी रास्ते गये। जट्टारी के पास वाले नाले में इत्तफाक से पानी नहीं था वहां से थोड़ी दूर पर एक कदम्बखण्डी महाराज जी ने हमें दिखलाई। उस कदम्बखण्डी की यह विशेषता थी कि जिस भी किसी वृक्ष के पास खड़ा होकर देखा जाए तो सब कतार में लगे हुए दिखाई देते थे। यह दृश्य दिखला कर महाराज जी एक ग्राम में गये। वहां एक छोटा सा शिवालय था। मैंने महाराज जी के मुख से सुन रखा था कि हम एक शिवालय में 6 महीने तक रहे। अनुमान से मैंने यह जाना कि यह वही शिवालय है। श्री महाराज जी से पूछने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। वहां से चलकर हम एक कुएं पर पहुँचे। वहां का धोरा ऊंचा था उस ग्रामवासियों ने उसे तोड़ कर ठीक कर दिया। 2, 3 आदमी महाराज जी की कार के पास आ गये। महाराज जी ने उनसे कुछ एक व्यक्तियों के जैसे भोला नम्बरदार कहां है। उन्होंने कहा कि वह तो माट गया। उन्हें शक हो गया कि ये तो श्री महाराज जी हैं इधर रास्ता साफ हो गया था और महाराज जी ने मुझे मोटर चलाने की आज्ञा दी। वे सब देखते ही

रह गये और उन्हें कोई उपाय न सूझा। वहां से हम मोरखी नूह झील से माट फिर मथुरा से दिल्ली रात को दस बजे वापस आ गये थे।

एक बार सन् 1935 में डीग का मेला था। रायबहादुर डा० मथुरादास ने वहां आंखों का आपरेशन किया और जून के महीने में सब को सब आंख बिलकुल ठीक बनी। यह एक आश्चर्यजनक चमत्कार था कि जून के महीने में ऐसा परिणाम निकला। उस मेले में बहुत से आश्रमवासी सेवा के लिए गये हुए थे। राव साहब जो हमेशा महाराज जी के साथ रहते थे। वे भी श्री महाराज जी के साथ गये। पांच, चार दिन पश्चात् राव साहब को लाहौर असेम्बली की मीटिंग में जाना था। वे दामोदर ब्रह्मचारी को साथ लेकर चले गये। अगले दिन सवेरे महाराज जी ने आज्ञा दी कि हम कहीं चलेंगे। मैं बिस्तर वगैरा साथ लेकर तैयार हो गया। श्री महाराज जी पहले मथुरा गये और बाद में यमुना का पुल पार करके माट, नूह झील और मारखी आदि होते हुए एक गांव में पहुँचे। एक जोहड़ के किनारे पाल पर एक मकान में ठहरे।

मैंने अनुमान लगा लिया था कि यह गांव श्री महाराज जी का जन्म स्थान है। क्योंकि पाल पर जामुन के पेड थे। जैसा कि महाराज जी कई बार उपदेश बता जाया करते थे कि वहां की जामुन बहुत मीठी थी। उसके पास ही शिव मन्दिर था जहां कि श्री महाराज जी 20 वर्ष पहले ठहरे थे। जब गांव वालों को मालुम हुआ कि श्री महाराज जी पधारे हैं तो ग्रामवासी दर्शन करने के लिए उमड़ पड़े। उन लोगों का महाराज जी से इतना प्रेम था कि शब्दों

से कहा नहीं जा सकता। एक सज्जन महाराज जो रिश्ते में चाचा लगते थे वे तो महाराज जी से पृथक ही नहीं होना चाहते थे। रात को दो बजे तक सत्संग होता रहा और फिर महाराज जी की आज्ञा से सब अपने २ घरों को अनिच्छा से चले गये। दूसरे दिन प्रातःकाल ही सब लोग आ गये तब महाराज जी ने मुझे आज्ञा दी कि स्नान कर आओ। मेरे साथ उनमें से एक व्यक्ति को भेज दिया व उससे कहा कि ऐसे कुएं पर ले जाना जहां सिर पर दाल बजे। अर्थात् मोरा सिर पर कूदे। मैंने स्नान किया व बहुत श्रद्धापूर्वक पूछा कि श्री महाराज जी का जन्म स्थान कहां है? उसने पास ही मुझे एक मकान की ओर इशारा किया। मकान बन्द था और उसमें कोई नहीं था। मैंने श्रद्धापूर्वक उसमें प्रवेश किया वहां एक मटके में कुछ मेथी सूखी हुई थी प्रसाद रूप मैंने उसमें से कुछ मेथी ली तथा कुछ मकान की भभूति ले ली। कई वर्ष तक यह प्रसाद मैंने एक अमूल्य निधि समझ कर उसकी पूजा की। उस समय मेरे पास गायत्री आदि कुछ पुस्तकें थीं। वो मैंने पात्र देखकर वितरित की मगर मुझे महाराज जी का इशारा था इसलिए हम कहां रहते हैं इसके विषय में कुछ नहीं बताया। दोपहर बाद श्री महाराज जी वहां से आने का विचार किया तो भोला नम्बरदार (उस ग्राम का एक निवासी) भी मोटर में साथ बैठ लिया। वो माट तक साथ आया वहां पर महाराज जी लघुशंका के लिए मोटर से बाहर आये तथा मुझे इशारे से कहा कि भोला को यहीं उतार दो। मैंने नम्बरदार को समझाया तो पांच मिनट तक उनकी आंखों के आंसू नहीं ठहरे। उस समय मुझे भी

बहुत दया आई कि ऐसे भक्त को साथ ले चलना चाहिए मगर चूँकि श्री महाराजजी की आज्ञा थी। नम्बरदार ने प्रार्थना की कि महाराज जी हर वर्ष एक बार दर्शन अवश्य दें। मैंने कहा यह बात मान्य है। तो महाराज जी ने कहा कि इससे लिखवा लो। मैंने डायरी का एक पन्ना निकाल कर ये बात लिखकर नम्बरदार को दे दिया मुझे क्या मालुम था कि अगले वर्ष तक श्री महाराज जी का पार्थिव शरीर ही नहीं रहेगा। वहां से मथुरा होते हुए महाराज जी डीग चले गये। नम्बरदार ने हमें बताया कि जब महाराज जी पहले यहां पधारे थे और प्रेमसुख (नम्बरदार का लड़का) से बातें करके चले गये तो मैंने स्थान २ पर महाराज जी को ढुँढवाने के लिए आदमी भेजे मगर व्यर्थ। श्री महाराज जी के एक लड़का था। बीस वर्ष पहले श्री महाराज जी उस गांव में गये थे और छः महीना यहां ठहरे थे तब उस लड़के (मोहनलाल) को उपदेश दिया। वह उपदेश से ऐसा प्रभावित हुआ कि लोगों ने मुझे बताया कि वे तभी सन्यासी होकर बाहर चले गये।

एक दिन राम और सेवानन्द विचरते २ उसी ग्राम (चाँदपुर) में पहुँचे। वहां जाकर गायत्री की पुस्तकें वितरित कीं। लोगों ने पूछा कि यह भूमानन्द ब्रह्मचारी पुस्तक पर नाम है यह कौन है? तब उन्होंने आश्रम के विषय में उन ग्रामवासियों को बताई कि रामपुरा में श्री महाराज जी का बनाया हुआ एक आश्रम है और वहां श्री महाराज जी पहले रहा करते थे अब वे सन् 1936 से परम धाम को प्राप्त हुए। तब उन लोगों ने बताया कि उनका

जन्म स्थान तो यही है। दो बार वे इस ग्राम में मोटर द्वारा आये भी थे। म. राम तथा सेवानन्द ने मुझे आकर बताया कि हम महाराज जी के जन्म स्थान के दर्शन करके आये हैं। मैंने उन्हें बार २ कहा कि महाराज जी यह प्रकट नहीं करना चाहते थे तथा इस विषय पर आगे चर्चा नहीं करनी चाहिए लेकिन वे न माने। सब आश्रमवासियों को इस बात का पता लग गया। म० कृष्णानन्द जी ने म. नित्यानन्द जी को चाँदपुर भेजा। और चन्दा करके चाँदपुर के जोहड़ पर उनकी याद में एक कुटिया बनवाई।

सन् 1967 की बात है कि गुरुपूर्णिमा के दिन पूजा के समय श्री महाराज जी की शक्ल से मिलते जुलते एक महात्मा साथ में अन्य महात्मा को लेकर आये और पूजा के सारे समय श्रद्धापूर्वक उनकी समाधि पर बठे रहे। पूजा की समाप्ति पर मैंने उनसे परिचय पूछा तो ज्ञात हुआ कि ये महाराज जी के मोहनलाल नामक सुपुत्र हैं और अब वे मोहननाथ कहलाते हैं। सब आश्रमवासी यह विदित होने पर उनका आदर सत्कार करने लगे। वे पांच छः दिन आश्रम में ठहरे और फिर अपने निवास स्थान दिल्ली में सुभाष नगर वापस चले गये। उनसे विदित हुवा।

श्री मोहननाथ जी से पता लगा कि उनकी दादी का नाम हितो हितो था और दादा जी का नाम प्रेमसिंह था। नाथ जी की बुवा जी हरभेजो देवी तथा माता जानकी देवी के नाम से प्रसिद्ध थीं। श्री महाराज जी के दो भाई और थे। एक हीरालाल तथा दूसरे शालिग्राम थे। शालिग्राम महाराज जी के समा जाने के बाद एक

बार रेवाड़ी आश्रम में भी आये थे। श्री मोहननाथ ने बताया कि मेरा जन्म श्री माहराज जी के सन्यास लेने के तीन मास बाद हुआ था। श्री महाराज जी के सन्यास लेने के बाद महाराज जी एक बार अपने गांव में पधारे थे। उस समय मोहनलाल जो की आयु १५, १६ वर्ष के लग भग थी। तब महाराज जो ४ मास तक गांव के बाहर एक शिवालय में ठहरे तथा मोहनलाल जी को पढ़ाते रहे। ४ मास के बाद महाराज जो देशाटन के लिए निकल गये। केवल ४ महीने के सत्संग से ही मोहनलाल जो को वैराग्य सा हो गया। जब महाराज जी अपनी जन्म भूमि से चलने लगे तो मोहनलाल जी को उनकी माता से उन्होंने मांगा तो उन्होंने इन्कार किया। श्री महाराज जी ने उन्हें काफी समझाया कि मैं मोहन को साधु न बनाकर एक महापुरुष बनाऊँगा। मगर वे न मानी। अन्त में उन्होने ये कहा कि मोहन ने यहां पर तो रहना नहीं है और सचमुच हुआ वही जो श्री महाराज जी ने भविष्य बाणी की। इस घटना के लगभग ३ वर्ष बाद मोहनलाल की माता का स्वर्गवास हो गया और वे भी साधु बन कर निकल पड़े। सुधीर ग्राम में विद्या प्राप्त करके देशाटन के लिए निकल पड़े। नैपाल, पंजाब आदि सभी स्थानों का भ्रमण किया तथा पंजाब के गुजरात जिले में फालिया तहसील के नाथ आश्रम में डेरा लगा लिया। अब मोहनलाल से वे मोहननाथ बन गये। 1947 में पाकिस्तान हिन्दुस्तान के बटवारा होने पर भारत आये तथा दिल्ली में सुभाषनगर $\frac{14}{8}$ में एक आश्रम बनाकर रहने लग गए।

अन्य संस्थाएँ :-

जब श्री महाराज जी शुरू में आए ही थे तब गढ़ी निवासी मुन्शी रूपराम जी दर्शनार्थ आए। उन्होंने भरतपुर से तहसीलदारी का इस्तीफा देकर अपने गांव में एक आश्रम खोला। वही पर उनकी स्त्री व उनकी पुत्रियां उमरावकौर तथा सूरजदेवी आदि भी रहने लगी। श्री महाराज जी रामपुरा आश्रम में जब भी आते थे तब एक बार उनके आश्रम में अवश्य जाते थे। महाराज जी ने वहीं पर सूरजदेवी को सार संग्रह लिखवाया। तब ही बोलनी के नम्बरदार ने एक जमीन का टुकड़ा आश्रम को दान दिया।

पालम में भी श्री महाराज जी आश्रम में आने से पहले ठहरा करते थे। वहां पर यादराम (दयानन्द) और मौनी भक्त जैसे कई एक सत्संगी थे। मौनी भक्त ने एक जमीन का कुछ टुकड़ा आश्रम के नाम करा कर भगवद्भक्ति आश्रम के नाम से खोल दिया गया। वहां पर अनन्तानन्द नामक एक साधु रहा करते थे जिनका सन् 1966 में स्वर्गवास हो गया। आजन्म उन्होंने आश्रम (पालम) की सेवा की। खेंटाबास में भी इसी प्रकार से एक भक्त ने आश्रम के नाम कुछ जमीन करा दी। अब वहां राव वीरेन्द्रसिंहजी ने ट्यूबवेल लगवाया हुआ है।

राव साहब के गांव गोविन्दपुरी में एक आश्रम राव साहब ने जमीन देकर बनवाया। वहां सूरजनारायण दिल्ली वाले ने एक धर्मशाला तथा एक कुआं बनवाया। म० दर्शनानन्द जी ने चन्दा करके एक विशाल जोहड़ खुदवाया और सैकड़ों वृक्ष लगवाये।

श्री महाराज जी यहां आने से पहले जीन्द की बनखण्डी महादेव में ठहरा करते थे। उनके उपदेश से कृष्णलाल भक्त ने एक जमीन आश्रम के नाम करा कर दुमंजिली एक कुटिया बनवायी। फिर सन् 1935 में महाराज जी मोटर द्वारा राव साहिब के साथ वहां पधारे। सूरजभान तहसीलदार (चीणा निवासी) ने महाराज जी और राव साहिब के लिए दो टैन्ट और पांच छः छोलदारियां लगवा दी। क्योंकि वहां कोई मकान नहीं था। श्री महाराज जी जब विराजे तो मकान का अभाव महसूस हुआ और आनन फानन में दो बड़े २ कमरे बनकर तैयार हो गये। भक्त मातूराम जी ने भी एक कमरा बनवा दिया। फिर श्री महाराज जी वापिस रामपुरा आश्रम में आ गये।

सन् 1936 में महाराज जी के परमधाम को प्राप्त होने पर एक मीटिंग में निर्णय किया कि यहां से शंकरानन्द जी को जीन्द आश्रम भेजा जाये ताकि वहां प्रबन्ध ठीक हो सके। म० शंकरानन्दजी म. रामानन्द जी म. सेवानन्द जी के प्रयत्न से अब उस आश्रम में एक गऊशाला और बहुत सुन्दर बाग जिसमें कि आम, नीबू, अमरूद लगते हैं लग रहा है। चन्दा करके उन्होंने सैकड़ों बीघा जमीन खरीद कर खेती बाड़ी होती है। उस जमीन व बाग से 12, 13 साधुओं का निर्वाह हो जाता है। म० कृष्णानन्द जी, आनन्द मुनि आदि २ वहां पर रहते हैं।

—.[०]:—

अकाल पड़ने पर गौओं की रक्षा :-

एक बार मालवीय जी श्री महाराज जी के दर्शन करने आश्रम में आये थे। उन दिनों यहां अकाल पड़ा हुआ था। श्री महाराज जी की प्रेरणा से एक "अकाल गौ कष्ट निवारिणी" सभा बनाई। उसके अध्यक्ष मालवीय जी बने और उपाध्यक्ष राव साहिब और गोस्वामी गणेशदत्त सैक्रेटरी तथा भक्त जी कोषाध्यक्ष बने। उन दिनों लोग सूनी गौएँ छोड़ देते थे और बधिक उनको इकट्ठा करके बूचड़ खाने में ले जाते थे। जब महाराज जी ने देखा और सोचा कि इस प्रकार गौओं की अच्छी नसल समाप्त हो जायेगी। यह देखकर उन सब गायों को एकत्रित करके सुकाल में भिजवाया और वर्षा होने पर लोगों में मुफ्त बांट दी गयीं। इस प्रकार हजारों गौओं को श्री महाराज जी ने प्राण रक्षा करवायी। इसके बाद भी दो, तीन बार अकाल पड़े। एक बार रामकिशन डालमिया ने ५० हजार रुपया दान दिया और एक बार बाजोरिया ने भी पांच हजार रु० दान दिया। इस प्रकार सूरजपुर के जंगल में और एक बार डीग के जंगल में गौएँ भेज कर उनको रक्षा की तथा वर्षा होने पर वहां से मंगाकर मुफ्त बांट दी। श्री महाराज जी के बाद में भक्त नन्दकिशोर जी और रामनरसिंह जी इस काम को सुचारू रूप से करते रहे थे।

—IX:—

श्री महाराज जी क्या थे ?

एक बार स्वयंबरदास शिक्षा विभाग के इंसपेक्टर अपने दो आदमियों के साथ आश्रम में पधारे और प्राचीन हिन्दू धर्म ब्रह्मचर्य प्रणाली पर मुफ्त शिक्षा दी जाती है। आश्रम में देखकर बहुत प्रभावित हुए। और उन्होंने कहा कि अछूतों को भी ऐसी पवित्र संस्था में स्थान मिलता है तथा वेदों की ऋचाओं का उच्चारण कराया जाता है देखकर मैं अत्यन्त खुश हूँ।

एकबार राइट ओनरेबल सर शादीलाल जी आश्रम में पधारे। उन्होंने दलित जाति के बालकों को शिक्षा दिया जाना देखा और इसकी भूरि २ प्रशंसा की और राव बहादुर बलवीरसिंह के लिए कहा कि ये आश्रम में भिन्न २ भाग के कामों में ऐसे भाग लेते हैं जैसे कि घर में करते हैं।

एक बार चौधरी बदनसिंह एम. एल. सी. बदायूं आश्रम में पधारे और उन्होंने कहा कि यदि भारत में ऐसी संस्थाय अनेकों हों तो निशुल्क अनिवार्य शिक्षा, स्त्री शिक्षा तथा दलितोद्धार का काम बड़ी आसानी से हो सकता है और उन्होंने कहा कि आश्रम के कार्यकर्त्ताओं का उत्साह, अनथक परिश्रम व आत्म विश्वास सचमुच प्रशंसनीय है।

एक बार राय साहब चौ० छोटूराम जी मन्त्री पंजाब कृषि विभाग आश्रम में पधारे। आश्रम में बिना किसी नहर आदि के हरा भरा विशाल उपवन देख कर आश्चर्य चकित हो गये। आश्रम के सादा जीवन तथा छूआछूत से दूर, और स्वयं काम करते

देखकर तथा भक्ति भावना से अत्यन्त प्रभावित हुये।

एक बार कर्नल विन्धेश्वरीप्रसाद चोफ सैक्रेटरी बनारस स्टेट आश्रम में पधारे तथा कहा कि मुझे जो शान्ति महाराज जी के दर्शन से प्राप्त हुई उसका वर्णन मेरी सामर्थ्य से बाहर है इस आश्रम में आकर भगवान् का स्मरण स्वयं हो जाता है मुझे यहां से मिला हुआ सुख अनिर्वचनीय है।

एक बार मियां लालसिंह डिप्टी कमिश्नर गुड़गांवा आश्रम में आये। उन्होंने कहा कि यहां के वातावरण तथा महाराज जी के सत्संग के पान से मुझे बहुत आनन्द प्राप्त हुआ है और उन्होंने बताया मुझे सब से ज्यादा आकर्षक यहां की गऊशाला लगी। यदि सर्वत्र ऐसी गऊशालायें स्थापित कर दी जायें तो जीव रक्षा का प्रश्न ही नहीं रहेगा।

एक बार गौरीशंकर भार्गव रईस अजमेर आश्रम दर्शनार्थ आये। उन्होंने श्री महाराज जी द्वारा स्थापित गऊशाला के लिए कहा कि इसमें गोपालन व स्वच्छता सराहनीय व आनन्ददायक है।

एक बार मदनलाल खुशहालचन्द गांधी व्यवस्थापक सत्याग्रह आश्रम सांभरमती आश्रम में आये। वे श्री महाराज जी का उपदेश सुनकर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा कि यहां गऊशाला में गोपालन नहीं गौपूजा का साक्षात् दर्शन है। फूलों से पूजा करना पूजा का एक विशेष ढंग है मगर उसमें जड़ता भी हो सकती है। यहां की पूजा चैतन्यमयी है और यहां पर गौ मन्दिर की भान्ति गऊशाला अत्यन्त स्वच्छ है।

एक बार हरिभाऊ जी उपाध्याय सम्पादक त्याग भूमि अजमेर आश्रम में पधारे। श्री महाराज जी का सत्संग लाभ प्राप्त करके अत्यन्त खुश हुये उन्होंने कहा कि गौरक्षा व गोपालन हिन्दू जीवन का एक खास अंग हो गया है इस आश्रम में यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। गौशाला की सफाई व आश्रम निवासियों की गौभक्ति देखकर चिन्तनचित्त प्रसन्न हो जाता है।

एक बार राय बहादुर दीवानज्ञान नाथ जो एडमिनिस्ट्रेटर नाभा स्टेट श्री महाराज जी के दर्शनार्थ आश्रम में आये। और उन्होंने कहा कि श्री महाराज जी के दर्शन करके मुझे बहुत आनन्द हुआ। मनुष्य की भलाई, भ्रातृप्रेम व सत्य का उपदेश सुनकर बहुत आनन्द मिला जो सन्तोष और सुख शान्ति मुझे यहां दिखाई दी उसमें मैं विशेष आश्चर्यान्वित हुआ हूँ।

श्री आनन्द गिरि महाराज आश्रम में आये। उन्होंने कहा कि महाराज जी उच्चकोटि के सन्यासी हैं और पूर्ण वैराग्यवान् तथा संसार से निवृत हैं। महाबली क्रोध तो उन्हें छुआ तक नहीं इस पर महाराज जो ने विजय प्राप्त कर रखी है।

एक बार राधा स्वामी मठ के सावणसिंह जी महाराज बक्शी खानसाह इन्कमटैक्स आफिसर के पास ठहरे। तभी महाराज जी भी उनकी कोठी पर ठहरे हुए थे। आपस में वार्ता करने पर राधा स्वामी को महाराज जी की बातों से बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। ये वेद शास्त्र के ज्ञाता ही नहीं बहुत अभ्यासी महात्मा थे।

एक बार लाला सर श्रीराम जी दिल्ली क्लोथ मिल आश्रम में पधारे। उन्होंने कहा कि श्री महाराज जी के सत्संग में आने पर

व्यक्ति की मानसिक स्थिति में ऐसी आश्चर्यजनक विचित्रता आ जाती है जिसका यथार्थ वर्णन शब्दों से नहीं हो सकता। तो भी यह कहा जा सकता है कि वो स्थिति उच्चकोटि के भक्ति भाव से प्लावित हो जाती है।

एक बार राव बहादुर सरदारसिंह डिप्टी कलक्टर मथुरा आश्रम में आये। और इतने प्रभावित हुए कि उनका कथन था कि महाराज जी के दर्शन से ही मनुष्य मात्र को सुख और सन्तोष प्राप्त होता है। श्री जमनालालजी बजाज प्रायः आश्रम में आया करते थे वे कहा करते थे कि श्रीमहाराज जी का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली है। निस्वार्थ सेवा और निष्काम प्रेम का आदर्श महाराज जी सब को सिखाते हैं। राव बहादुर चौधरी लालचन्द जी कई बार आश्रम में पधारा करते थे उन्होंने महसूस किया कि महाराजजी गरीब और मजदूरों से बहुत प्रेम करते हैं उनका समस्त प्रयत्न इसलिए था कि लोग मजदूरों का मान करना सीखें।

ठाकर धौकलसिंह पचेरी एक बार आश्रम में आये और उन्होंने कहा कि श्री महाराज जी इतने तेजस्वी व सान्तस्वरूप हैं कि इनका एक बार दर्शन करने से आयु भर इनकी सौम्य मूर्त्ति हृदय से नहीं निकलती :

श्री सीताराम जी सैशन जज संगरूर महाराज जी में बहुत श्रद्धा रखते थे। वे प्राय जीन्द आश्रम में महाराज जी के पास रहते थे। उनका कहना था कि वेद और शास्त्र की व्याख्या करने में महाराज जी व्यास जी के तुल्य हैं। तथा महान् तपस्वी और अपूर्व विद्वान् हैं। महाराज जो के जो भी कोई एक बार दर्शन कर लेता हैं वह आयु भर के लिए महाराज जी के चरणों में झुक जाता है।

—:[०]:—

[५६]

श्री महाराज जी के सद् उपदेश

श्री गुरु परमानन्दं वन्दे स्वानन्द विग्रहम् ।
यस्य सानिध्य मात्रेण चिदानन्दायते तनुः ॥

यह जीवात्मा जब अपने निजानन्द में स्थित होता है तो उस अवस्था में जिस आनन्द का यह अनुभव करता है उसके लिए वेद कहता है कि वह आमेय और अचिन्त्य है और जब वह अपने केन्द्र स्थान से भटक जाता है तो उसकी दशा प्रत्यक्ष में अत्यन्त शोचनीय होती है उसको किसी प्रकार की शान्ति नहीं मिलती, मृग-तृष्णा की भान्ति जैसे जड़ पदार्थ की बाह्य चमक दमक पर लालयित होकर और अपने उत्साह का संयम करके वह उसको पकड़ने दौड़ता है वहां ही से उसे क्षण भर में निराशा और दुःख का प्रसाद मिलता है क्योंकि जो भी कर्म्म वह अपने मन के वशीभूत होकर करता है उसका फल सिवाय दुःख के और क्या हो सकता है ? यह साधारण बात है कि इसका प्रत्येक मनुष्य को अनुभव है कि मन के अनुकूल काम को चिन्तन करने में, उसके अनुकूल कर्म्म करने में और अन्त में उसका फल भोगने में दुःख ही दुःख है। मनका क्या है इसकी अद्भुत शक्ति है यह एक क्षण में जगत् की रचना करता है इसकी गति के साथ विद्युत की गति का कुछ भी मुकाबला नहीं हो सकता अब इसमें विचार ने की बात यह है कि इतनी तीव्र गति होते हुए इसकी गति भी नीचे को है। ऊपर को नहीं है उसके लिए कबीर जी ने एक दोहे के एक पाद में कितना उचित और उत्तम कहा है:—

कोटि करम पल में करें, यह मन विषया स्वाद।

ऐसे मन के चक्र से दुःखित और पीड़ित होता हुआ यह आत्मा अहर्निष अपने निजानन्द की तरफ जाने का उद्योग व प्रयत्न करता रहता है।

संसार के अनादि चक्र के साथ २ जीवों का यह प्रयत्न अनादि है और इसी प्रकार बना रहता है। जितने धर्म्म तुम्हारे देखने और सुनने में आए हैं वह सब ही उसी आनन्द की डिम डिमो पीटते हैं। प्रत्येक धार्मिक आचार्य यही घोषणा करता है कि मेरे पीछे चलने से तुम अपने निज घर में चले जावोगे। इस रहस्य का रूप पृथक २ हो सकता है। परन्तु बात वही है आप चाहें जीवात्मा का अपने पिता परमात्मा मे जा मिलना समझें या अपने आपका आपे में मिल जाना समझें। इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। हमारी बाह्य दृष्टि होने से हम रूप के भ्रम में पड़े हुए हैं वरना पिता और पुत्र में भेद क्या है यदि बीज में और फली में भेद हो तो पिता और पुत्र में भी भेद हो सकता है अन्यथा यह बुद्धि का आवरण ही तो है। उस आनन्द के लिए बहुत देह धारियों ने समय २ पर घोषणा की है कि वह कहते हैं हमने इसको पालिया है और जो हमारी आज्ञानुकूल मार्ग पर चल जायेगा वह भी उसको प्राप्त कर लेगा। ऐसे देहधारी संसारी बन्धनों से बिलकुल स्वतन्त्र. देश, काल और जाति की दीवारों से न बन्धे हुए अपने २ ढंग में पूर्ण विश्वास दिलाकर पथ प्रदर्शक की जुम्मेवारी लेकर बेधड़क कहते सुनाई देते रहे हैं कि "आओ मेरा दामन पकड़ लो मैं तुम को निज स्थान में पहुँचा दूंगा"।

इस शिक्षा को धर्म या दीन की शिक्षा का नाम दिया जाता

है। इन सब का उद्देश्य समान ही होता है चाहे लक्ष और साधन में कितना ही भेद हो परंतु इतना ही नहीं इसमें मुख्य साधन में भी कभी भेद नहीं होता वह अब भी है और भविष्य में भी रहेगा उसके बिना अन्य सब साधन बेकार है वह साधन है परं पावनी भक्ति। उस भक्ति की प्राप्ति श्रद्धा और विश्वास से होती है और श्रद्धा और विश्वास गुरु आचार्य व भगवान की दया से होता है। भगवान् शंकराचार्य जी कहते हैं:—

मोक्ष कारण सामग्र्यां भक्ति रेवगरीयसि।

स्वयं आनन्द कन्द भगवान अपने प्यारे भक्त सखा अर्जुन को बड़े प्रेम से समझाते हैं।

मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजि मां नमस्कुरु:।
मामेवैष्यासि पुक्त्वैव मात्मानं पत्परायण:॥

मेरे मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मुझको नमस्कार कर, मुझको ही प्राप्त हो जावेगा। इस प्रकार अपने आपको मेरे परायण कर।

जो भक्ति अनिवार्य साधन है उस भक्ति के बिना आत्मा का विकाश होना असम्भव है और उसके हो जाने से उस परं प्रिय प्रीतम का पाना ही नहीं प्रत्येक, अवस्था में देश, काल की मर्यादा से ऊपर सब कालों और सब दशाओं में प्रत्यक्ष है। जैसा कि वह सबको मिला है। और तो क्या उसके लिए तो योनि का भी भेद नहीं है जैसा कि वह अपने भक्तों को मिला है।

व्वाधस्या चरणं ध्रुवस्य चवयो विद्या गजेन्द्रस्य का।
कुब्जाया: किमुनामरूपधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम्॥

वंशः को विदुरस्य यादव पते रुग्रस्य किं पौरुषम्।
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणं भक्ति प्रियो माधवः॥

ऐसी परं पावनी और सर्व व्यापिनी भक्ति की भक्ति करने के लिए भगवान् को दया हुई है उसमें हम आपको अपना भाई बनाना चाहते हैं उसी के लिए प्रार्थना करते हैं। भगवान् की भक्ति ही से बेड़ा पार होगा अन्य सब साधन तीनों कालों में बेकार हैं और कलियुग में तो एक मात्र भक्ति ही साधन है जैसा कहा है "कलो तु केवला भक्तिः" उस भक्ति के दो साधन बताए हैं भजन और सेवा जैसा "भजन सेवयां भक्तिः" उस कल्याण कारिणी भक्ति के लिए सूत्र रूप से कुछ पंक्तियां दी जाती हैं उनको हृदयङ्गं कर लीजिए। इनको बार २ पढ़िए और हो सके तो कण्ठस्थ कर लीजिए और फिर विचार पूर्वक इस के अनुसार आचरण कीजिए निश्चय आप भक्ति मार्ग की तरफ आएँगे और आपकी आत्मा का विकाश होगा और अन्त में आप निजानन्द को प्राप्त होंगे।

भगवान् की प्राप्ति के लिए भक्ति ही एक मुख्य साधन माना गया है, और सब साधन गौण माने गए हैं। और वास्तविक देखा जाय तो विदित भी यही होता है कि जब तक आत्मा परमात्मा के साथ एक न हो जाय अर्थात् जब तक उसकी इच्छा के आधीन न हो जाय तब तक जीवन में कोई भी आनन्द नहीं। और अपनी वासना स्थूल हो या सूक्ष्म कोई भी नहीं रहनी चाहिए। केवल परमात्मा की इच्छा को परं इच्छा समझ कर उसको पालन करना और अपने मिथ्या अहंकार उसमें विस्मरण करना ही आनन्द पद या मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है। भगवत् को छोड़ किसी वस्तु का

आश्रय न लेना परन्तु तन, मन और आत्मा को भगवत् से उत्पन्न हुए जान और उसी के आधार समझ उसी में लीन कर देना ही जीवन का लक्ष्य है। कोई कर्म करे व भगवत् अर्पण हो. ऐसे भक्ति-योग द्वारा व्यवहार और परमार्थ में कुछ अन्तर नहीं रहता। वह जीवन मुक्त हो जाता है।

—:×:—

मंगलं भगवान् विष्णुमंगलं गरुडध्वजः।
मंगलं पुण्डरीकाक्षो मंगलायत्नो हरिः॥
शच्चिदानन्दकन्दाय जगदंकुर हेतवे।
सदोदिताय पूर्णाय नमोऽनन्ताय विष्णवे॥
यत्सत्येन जगत्सत्यं यत्प्रकाशेन भातियत्।
यदानन्देन नन्दन्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

"भगवतो भक्तिः भगवद्भक्तिः" भगवत की भक्ति सब प्राणियों को विशेष कर मनुष्य मात्र को करनी चाहिये। जिसने वस्तुओं के अवलोकनार्थ हम को नेत्र दिये हैं, सुनने के लिए श्रोत, सूंघने के लिए घ्राण, रस के लिए जिह्वा, स्पर्श के लिए त्वचा आदि दी है। यदि यह पांच इन्द्रियां न होती तो हम को किसी पदार्थ का ज्ञान न होता। ऐसे ही मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार चार अन्तर की इन्द्रियें दी हैं जैसे बुद्धि से निश्चय करते हैं, चित्त से चिन्तन, मन से मानना और अहंकार से अहंभाव का ज्ञान। यह हम को ज्ञान के साधन दिये हैं। वैसे ही कर्मेन्द्रिय दी है हस्त पाद, पायूपस्थ, वाणी इनके विना हम कोई कर्म नहीं कर सकते। भीतर का कर्मेन्द्रियें प्राण, अपान, समान, व्यान और उदानादि हैं इनसे रक्त

के कण २ और नाडियों में क्रिया हो रही है जिसके द्वारा हम जीवित हैं। ऐसे ही पृथ्वी बसने के लिए, जल पीने के लिए, वायु जीने के लिए, अग्नि पचने तपने के लिए, आकाश निकले बढ़ने के लिए, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, विद्युत् और आकाशगंगा इत्यादि हमारे जीने और प्रसन्न करने के लिए हमें दया करके प्रदान किये हैं। ऐसे परमेश्वर को भूलना कितनी बड़ी कृतघ्नता है। हम को चाहिए कि सब पदार्थों से बढ़कर परमात्मा से प्रेम करें पूर्वोक्त सारे पदार्थों को उसके प्रेम मार्ग में लगावें स्त्री, पुत्र, मित्र, धनादि से जो प्रेम होता है उन सब से बढ़कर हम परमेश्वर से प्रेम करें। परमेश्वर से प्रेम करना ही भक्ति है। "भजनं अन्तः करणस्य भगवताकारता रूप भक्तिः" भजन करना, भजन गाना, अन्तः करण का भगवताकार हो जाना भक्ति है। "भक्ति शब्देन फलममिधीयते" भक्ति शब्द से श्रवण कीर्तनादि जो साधन हैं उनका फल विधान किया है। यथा "भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्तः करणं क्रियते अनयैति भक्तिः"।

मनः करोति पापानि मनो लिप्यते पातकैः।
मनश्च तन्मयो भूत्वा न पुण्यैर्न पातकैः॥

मन पाप करता है, मन पातक से लिपाय मान होता है। जब मन भगवदाकार हो गया तब पुण्य पापों से रहित होकर भगवत् को प्राप्त होता है। जो अपनी इन्द्रियों के तृप्ति के वास्ते प्रीति होती है उसका नाम काम है। कृष्ण की इन्द्रियों के प्रसन्न होने के लिए जो प्रीति और इच्छा है उसका नाम प्रेम है। जैसा कि:—

आत्मेन्द्रिय प्रीति और परितृप्तये काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम॥

जो संसार में पुत्र पौत्र के मरने में चिन्ता होती है, धन्य धान्य, भोग, यश इत्यादि की चिन्ता उत्पन्न होती है वह यदि भगवान् के चणारविन्द में हो तो फिर यम राज की और जन्म मरण रूपी वेदना की कभी चिन्ता नहीं होती है। वह जन्म मरण के दुःख से छूट कर परमानन्द परमात्मा को प्राप्त हो जाता है जैसे:—

या चिन्ता भुवि पुत्र पौत्र भरणे, व्यापार सम्भाषणे।
या चिन्ता धन धान्य भोग यश सां, लाभे सदा जायते॥
सा चिन्ता यदि नन्द नन्दन पद द्वन्द्वाविन्दे क्षणम्।
का चिन्ता यम राज भीम सदने द्वारं प्रमाणे प्रभो॥
आदरेण यथा स्तौतति धनवन्तं धनेच्छया।
तथा चेद्विश्य कर्तारं को न मुंच्येत् बन्धनात्॥

धन की इच्छा से सादर जैसे भगवान् की स्तुति करते हैं उसी प्रकार यदि विश्व के कर्त्ता का चिन्तन करेंगे तो कौन बन्धन से मुक्त न हो। अर्थात् मुक्ति में कोई सन्देह नहीं भगवान् के प्रेम में कभी रोना चाहिये कभी उन्हें याद करके हंसना चाहिये। उनके प्रेम में नाचना चाहिये गाना चाहिये अनुशोलन करना चाहिये। कभी सबसे निवृत हो कर चित्त वृत्ति को हृदयाकाश के प्रकाश में लगा कर चुप हो जाना चाहिये।

क्वचिद्रुदन्त्यच्युत चिन्तया,
क्वचिद्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजम्।
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः॥

प्रथम भगवद्भक्त महात्माओं की सेवा करनी चाहिये। सेवा से उनकी दया का पात्र बनता है श्रद्धा होती है। श्रद्धा से हरि गुण श्रवण करता है। फिर परमात्मा में प्रेम की वृद्धि होती है।

"प्रेम्णोऽथ परमाकाष्ठा उदिता भक्ति भूमिका"

इस लिये भगवद्भक्तों की सेवा करनी, उनका सत्संग करना उनके मुखारविन्द से ईश्वर के गुण महात्म्य सुनना, साथ कीर्त्तन करना, भगवद्गुण का बार बार स्मरण करना, पाद सेवन, अर्चन वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनादि सब भगवत् के लिये करना भक्ति है। भक्ति महात्माओं की कृपा अथवा ईश्वर कृपा से प्राप्त होता है ईश्वर का जिस पर कृपा होती है उसी भक्त के हृदय में भक्ति प्रकाशमान् होती है यथा:—

"प्रकाश्यते कापि पात्रे यथा वृज गोपिकानाम्।"

भगवत् के चरणों में गाढ प्रेम, अपनी सर्व वासनाओं के ऊपर भगवदिच्छा का अधिकार स्थापित करना, अर्थात् जितनी वासनायें फुरें सब भगवदिच्छा से प्रेरित हों या भगवदिच्छा को पूर्ण करने वाली हों और उनके विरुद्ध कोई वासना न फुरने पावे। हृदय में भगवत्प्रेम की अजस्र धारा ऐसी निरन्तर बहती रहे जैसे गंगा का प्रवाह कभी एक क्षण भी हृदय भगवत प्रेम से शून्य न रहे। और जैसे मीन के लिये जल ही जीवन होता है वैसे ही भक्ति मार्ग पर चलने वाले के लिये भगवत् प्रेम ही जीवन होता है। श्रोत्र से भगवत् के गुण श्रवण करना जिह्वा से उनके गुण कीर्तन करना, हस्तों से पूजा और सेवा करनी, पगों से उनके कार्य पूर्ण करने के अर्थ चलना मुख से नामोच्चारण करना तथा भगवत् कथा का पाठ करना,

नासिका से भगवत् चरण से स्पर्श हुऐ पुष्पों की सुगन्धि लेनी इत्यादि सर्वाङ्गों को भगवत् के अर्पण करना ही जीवन का उद्देश्य है। मन से स्वरूप का चिन्तन करना, बुद्धि से ध्यान, चित्त से स्मरण और अहंकार से भगवत् पर अपना मान करना इस प्रकार आत्मा से आत्मा निवेदन तथा सर्व भगवत् समर्पण करना ही, जीवन का आधार है।

जब मनुष्य अपनी सम्पूर्ण चेष्ठा और कर्मों को भगवत् के समर्पण कर देवे और उसके विस्मरण में परम व्याकुलता होवे तब जानो कि भक्ति का समुद्र मेरे अन्दर उमड़ रहा है। भक्ति कर्म और ज्ञान से भी बड़ी है। भक्त अपने सम्पूर्ण कुल और पृथिवी को पवित्र करते हैं।

तदर्पिताऽखिला चारता तद्विस्मरणे परम व्याकुलता।
सा तु कर्मज्ञानेभ्योप्यधिकतरा। (सूत्र)

ईश्वर पूजा में अनुराग होना पराशर के मत में भक्ति है। कथादि में अनुराग होना गर्ग के मत में भक्ति है। आत्मा में निरन्तर रति करना शाण्डिल्य के मत में भक्ति है। नारद जी के मत में ईश्वर में सब आचरणों का अर्पण कर देना और उसके विस्मरण में परम व्याकुल होना भक्ति है। भगवदिच्छा के आधीन रहना अपनी वासना स्थूल हो चाहे सूक्ष्म किंचित् भी नहीं रहनी चाहिये। केवल परमात्मा की इच्छा को परम इच्छा समझ कर उसका पालन करना और अपने मिथ्या अहं का उसमें विस्मरण करना ही अन्तिम पद है। भगवत् को छोड़ किसी वस्तु का आश्रय न लेना किन्तु प्राण और आत्मा को भगवत् से उत्पन्न हुये जान और उसी के आधार समझ उसी में लीन

कर देना चाहिये। "स एव अधस्तात स उपरिष्टात स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वं मिति, अथातो अहंकारादेश एव अहमेव अधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादह पुरस्तादह दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वम्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन। यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्वि जानाति स भूमा॥

भगवद्भक्त को सब कुछ भगवादकार ही प्रतीत होता है। आगे पीछे दायें बायें ऊपर नीचे सब कुछ परमात्मा ही परमात्मा दिखाई देते हैं। भगवद्भक्त में और परमात्मा में कुछ भी अन्तर नहीं है। भगवद्भक्त भगवान् के लिये और भगवान् भक्त के लिये है। भगवान् भक्तों के द्वारा ही मिलते हैं।

मुझ से मिलना जो चाहे कर भक्तन की सेव।
उनमें होकर मैं मिलूं करूं बहुत ही हेव॥
जहां भक्त मेरे पग धरें मैं धर देऊं हाथ।
लारैं लाग्यो ही फिरूं कभी न छोड़ूं साथ॥

०:—:०

एक बार नारद जी भ्रमण करते करते ब्रह्मा जी के पास गये और उनसे पूछा कि भगवन् इस कलि काल से मनुष्य का किस प्रकार निस्तारा हो। ब्रह्मा जी ने कहा तुमने बहुत श्रेष्ठ पूछा है जो सारी श्रुतियों का रहस्य है गोप्य है उसे मैं तुमको बताता हूँ कि "भगवान् आदि पुरुष नारायण का नामोच्चारण करने से मनुष्य इस संसार सागर से पार उतर सकता है। नारदजी ने पूछा कि उनके नामोच्चारण

की क्या विधि है तो ब्रह्मा जी ने कहा कि भगवत् नामोच्चारण की विधि नहीं शुद्ध, अशुद्ध, किसी अवस्था में, किसी स्थान में भगवत् नामोच्चारण कर सकता है। भगवत के नाम का जप करने वाला ब्रह्म हत्या, बीर हत्या, पितृ, देव, मनुष्यों, के साथ में किये हुए अपकारों से छूट जाता है।

—: × :—

शास्त्रों में नौ प्रकार की भक्ति का प्रतिपादन किया है।

श्रवणं कीर्त्तन विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्

१. ईश्वर के गुण और महात्मा सुनने की भक्ति।
२. ईश्वर के कीर्त्तन की भक्ति।
३. स्मरण की भक्ति।
४. पाद सेवन करने की भक्ति।
५. अर्चन की भक्ति।
६. वन्दन की भक्ति।
७. दास भाव की भक्ति।
८. सखा भाव की भक्ति।
९. आत्म निवेदन की भक्ति।

श्री भगवान् की प्राप्ति के लिये यह नौ प्रकार की भक्ति मानों एक सीढी है। जिस प्रकार से मनुष्य को ऊंचे शिखर पर चढ़ने के लिये सीढी की आवश्यकता होती है और वह एक सीढी से

दूसरी सीढी पर पैर रख कर ऊपर पहुँच जाता है इसी प्रकार से भगवद्धाम की प्राप्ति के लिये यह नवधा भक्ति रूपी सीढी है। इनमें से क्रमशः एक के बाद दूसरी भक्ति का आचरण करते हुए क्रमशः भगवान् की तन्मय रूपी भक्ति की प्राप्ति होती है।

—.[०]:—

ओं पितानोऽसि पितानो वोधि।
नमस्तेऽस्तु मा मा हि ७ सि॥
नमस्ते रुद्रमन्यव उतोत इषवे नमः।
बाहूभ्यां उतते ते नमः॥

पहले समय में ग्राम ऐसे ढंग से बनाये जाते थे कि प्रत्येक ग्राम का दक्षिण भाग और पश्चिम भाग जंगल रक्खा जाता था पूर्व और उत्तर भाग में कृषि होती थी। ग्राम के चहूँ ओर विशाल और पूजनीय वृक्ष लगाये जाते थे जिन पर भाँति भाँति के पक्षी मधुर स्वर से बोलते हुए घड़ियों का काम देते थे। दक्षिण दिशा की ओर श्मशान हुआ करते थे और अन्त्यजों का निवास भी उसी ओर होता था कारण कि उधर की वायु बहुत कम चलती है प्रत्येक ग्राम खुश्की और तरी का ध्यान रखते हुए सम भूमि में बसाया जाता था। आधी भूमि में खेती आधी में गोचर भूमि रहने से पशुओं की बहुतायता, और दुग्ध, दधि की प्रचुरता के कारण अन्न न्यून व्यय होता था। पत्ते और गोबरादि के खाद मिलने के कारण और थोड़ी जमीन को अच्छी कमाने के कारण अन्न बहुत होता था। आधी भूमि से राज्य

कर नहीं लेता था इससे राजा और प्रजा को अधिक सुख मिलता था यह सभी कृषक लोग जानते हैं कि जो पैदा सौ बीघे पृथ्वी में होती है वह अच्छी भाँति कमाने पर पचास बीघे में ही हो जाती है। जो नौकर सरकार को २००) में मिलते हैं वह अन्न घृतादि के सस्ते होने के कारण ८०) अथवा ७०) ही में मिल सकते हैं। और गौ एक ग्राम से दूसरे ग्राम की सीमा तक चरती हुई सुख पूर्व आ जा सकती हैं। बुरी नसल का कोई सांड नहीं छोड़ा जाता था। जिसकी मा अत्यन्त दुधार होती थी उसके होनहार बच्चे को सांड छोड़ते थे। अन्यथा पंचायत और राज्य की ओर से दण्ड मिलता था। इसी प्रकार वृक्षों को, अन्न की, मनुष्यों की उत्तम नसल बढ़ाने के लिये संस्कार किये जाते थे। जैसे गाजर को मीठी बनाने के लिये शक्कर से, मक्को कपास को गोबर से, आम को दूध और शर्करा से भिगो कर के बोया जाता था इत्यादि। अब भी यह प्रथा प्रचलित तो है परन्तु गोधूम यवादिकों की जो प्रथा है वह सम्प्रदायिक झगड़ों के कारण लुप्त हो गई है। कृषकों को चाहिए कि गोबर और हड्डियों को अपने खेतों में दबा दें जिस से उसका उत्तम खाद बन जाय। गोबर खुला हुवा पड़ा रहने से उसके परमाणु उड़ जाते हैं। अपने खेतों की मेंड़ों पर वृक्ष लगाने चाहिये। परमेश्वर जल में निवास करते हैं इस कारण जल को अपने खेतों से बाहर वृथा न जाने देना चाहिये। झील बनाने चाहियें, बन्ध बान्धने चाहियें। तालाब खुदवाने चाहियें उन में जल का संचय करना चाहिये। जिससे अच्छे वृक्ष और बेल और औषधियां उत्पन्न होंगी जिनसे बड़ी अच्छी हरियाली होगी। हरियाली मे बैठे हुए श्री हरि भगवान् आंखों को तराई देंगे। चित्त में शान्ति होगी इत्यादि।

इसलिए सब मनुष्यों को चाहिये कि वह अपने सिर से ऋण को उतारें जो मनुष्य दूसरे के लगाये हुए वृक्षों की छाया में बैठ कर आनन्दित होता है उसको चाहिये कि वह भी वृक्ष लगावे। जो मनुष्य दूसरों के कूप और तालाबों से पानी पीता है उसको उचित है कि वह भी तालाब और कूप बनवावे अथवा उनमें भाग लें। जो मनुष्य किसी का नमक खाता है अथवा दूध पीता है वह उसके वंश की रक्षा करने के लिए यत्न करें। जैसे लोग गौ का दूध पीते हैं और उनके बछड़ों का कमाया हुआ अन्न खाते हैं यदि उसका हनन या अनिष्ट चिन्तन करें तो उनके कृतघ्नता रूपी दोष को कोई मत नहीं उतार सकता है। इसी प्रकार जिन ऋषियों की लाई हुई गंगा का जल पीते हैं, जिनके शास्त्रों से शास्त्री बनते हैं, जिस देश के पांचों तत्वों से विशेष कर भूमि से जिनका शरीर निर्माण हुआ है। उसकी सेवा प्राणपन से करनी चाहिए। देश नरेश महेश तीनों की भक्ति करना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है जिसके द्वारा मनुष्य ने अपना जन्म देखा है अशक्त अवस्था में जिन्होंने इसको पाला पोषा है उन माता पिता की भक्ति करनी चाहिये। अग्नि होत्र करके देवताओं का ऋण, तर्पणश्राद्धादिक से पितृऋण वेद शास्त्रों के पठन पाठन द्वारा ऋषि ऋण उतारना चाहिए। गुरु भक्ति मनुष्य को संसार से पार उतारती है सो अवश्य करनी चाहिये। गुरु वही है जो इस लोक और परलोक के ज्ञान का दाता, अज्ञान का नाशक और अपना परम हितैषि हो।

एकाक्षर प्रदातारं यो गुरुं नाभिनन्दति।
श्वान जन्म शतं गत्वा चाण्डालेष्यवभि जायते॥

एक अक्षर देने वाले गुरु का भी जो अभिनन्दन नहीं करता है वह कुत्तों के सौ जन्मों में जाकर पश्चात् चाण्डाल के यहां जन्म लेता है।

तस्मात् सद्गुरु कटाक्ष लेश विशेषेण सर्व
सिद्धयः सिद्धयन्ति सर्व बन्धाः प्रविनश्यन्ति।

सद्गुरु की कृपा कटाक्ष के लेश विशेष से सर्व सिद्धि सिद्ध होती है। सर्व बन्धन नाश होते हैं।

श्रेयो विघ्नाः सर्वे प्रलयं यान्ति।

श्रय मार्ग के सब विघ्न प्रलयको प्राप्त होते हैं।

सर्वाणि श्रेयांसि स्वयमेव प्रायान्ति।

सब कल्याण स्वयं प्राते हैं।

यथा जात्यन्धस्य रूप ज्ञानं न विद्यते तथा
गुरुपदेशेन विना कल्पकोटिभिस्तत्व ज्ञानं न विद्यते।

जसे जन्म के अन्धे को रूप का ज्ञान नहीं होता है वैसे ही गुरुपदेश विना क्रोड कल्पों मे भी तत्व ज्ञान नहीं होता।

गुरु कटाक्ष विशेषेण अचिरादेव तत्व ज्ञानं भवति।
यदा सद्गुरु कटाक्षो भवति तदा भगवत् कथा
श्रवणाध्यानादौ श्रद्धा जायते।

गुरु कटाक्ष विशेष से शीघ्र ही तत्व ज्ञान होता है। जब सद्गुरु कटाक्ष होता है तब भगवत् कथा श्रवण ध्यानादि में श्रद्धा उत्पन्न होती है। दुर्वासना नाश होती है।

हृदय पुण्डरीक कर्णिकायां परमात्माऽऽविर्भावो भवति।
ततो दृढतरा वैष्णावी भक्तिर्जायते।
शुभा शुभ कर्माणि सर्वाणि सवासनानि नश्यन्ति।
सात्विक वासनया भक्ति अतिशयो भवति।

भक्ति अतिशयेन नारायणः सर्वं मयः सर्वावस्थासु विभाति।
सर्वाणि जगन्ति नारायण मयानि प्रविभान्ति
नारायण व्यतिरिक्तं न किंचिद्स्ति।
एतद् बुद्ध्वा विहरति अस्य महापुरुषस्य।
क्वचित् क्वचित् ईश्वर साक्षात्कारो भवति।

हृदय रूपी कमल की हण्डी में परमात्मा का आविर्भाव होता है। पश्चात् दृढतर वैष्णवी भक्ति उत्पन्न होती है। वासनाओं के सहित शुभाशुभ सब कर्मों का नाश हो जाता है। सात्विक वासनासे भक्ति अतिशय होती है अतिशय भक्ति करके सब अवस्थाओं में नारायणमय ही प्रतीत होता है। सारा जगत नारायण रूप हो जाता है। नारायण के सिवा कुछ नहीं ऐसा जानकर विहार करता है। इस महापुरुष को कुछ २ ईश्वर साक्षात्कार हो जाता है।

मनुष्य को सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य जानना चाहिए।

'त्रयकाला बाधित्वं सत्यत्वम्'

तीनों कालों में जिसका बाध न हो अर्थात् तीनों कालों में जो एक रस रहे उसे सत्य कहते हैं। सत्य बोलने से वाणी सिद्ध होती है, संकल्प फलीभूत होते हैं। सत्यासत्य के विषय में शास्त्र कहते हैं।

न सत्य वचनं तत्वं नातत्व वचनं मृषा।
यद्भूत हित सत्यन्तं स सत्य मिति कथ्यते॥

(व्यास)

न सत्य वचन तत्व है, न असत्य वचन अतत्व है। जिससे भूतों का अत्यन्त हित हो वह सत्य कहता है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयाद्देश धर्मः सनातनः ।।

सत्य बोले, प्यारा बोले, अप्रिय सत्य न बोले (जैसे काणे को काणा कहना और सूरदास को अन्धा) प्यारा हो परन्तु असत्य हो ऐसा भी न बोले यह सनातन धर्म है ।

अनुद्वेग करं वाक्यं सत्यं प्रिय हितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।।

किसी के चित्त को खराब न करने वाला सत्य, प्रिय, हितकर और प्रमाण युक्त वचन बोले यह वाणी का तप कहा है ।

अश्वमेव सहस्त्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेध सहस्त्राद्धि सत्यमेको विशिष्यते ।।

सहस्त्र अश्वमेध और सत्य को तराजू से तोला तो सत्य ही विशेष रहा ।

इदं सत्य मिदं सत्यं, सत्यमेत दिहोच्यते ।
अहं सत्यं परब्रह्म मत्तः किंचिन्न विद्यते ।।

यह सत्य है यह सत्य है सत्य यह यहां कहा जाता है । मैं सत्य परब्रह्म हूं मुझ से भिन्न किंचित् मात्र भी नहीं ।

× × × ×

जैसे कोई मनुष्य भागते २ थक गया हो उसकी अपेक्षा बैठ जाने में अधिक आनन्द होता है उससे अधिक सोने में और उससे अधिक मरने में । जब मनुष्य संसार में जन्मता है तब मानो कारागार में फंसता है जब शरीर छोड़ता है तब कारागार से मुक्त होता है।

मुमुर्षु को कुछ दिन पहले से ही मृत्यु के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। कान बन्द करने पर घोष सुनाई नही देता दीपक में गन्ध, नाक का दीखना, खास स्वप्न दीखना इत्यादि।

इस मनुष्य के तीन शरीर हैं। तीनों लोकों से सम्बन्ध रखते हैं। स्थूल शरीर भूलोक से, सूक्ष्म भुवर्लोक से और कारण स्वर्गलोक से। भूलोक से जब मर के जाता है तो भुवर्लोक को प्राप्त होता है और भुवर्लोक से स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है। जल में पड़ी हुई बाबाजी की तूम्बी के समान ऊपर ही ऊपर जाता है लौट कर फिर नहीं आता अन्त में मुक्त हो जाता है। तूम्बी में कंकर पत्थर भर देने से अथवा दाब देने से वह नीचे जाती है और कंकर पत्थर निकल जाने से वह फिर ऊपर ही को उन्नति करती है। ऐसे ही जीवात्मा अविद्यादि दोषों के कारण जन्म मरण में आता है ओर दोष छुटने पर मुक्त हो जाता है। जन्म लेता हुवा सारी बुराइयों से युक्त होता है और शरीर छोड़ता हुवा मुक्त होता है जब आदमी मरने को होता है तो बड़ी शान्ति और शीतलता का अनुभव करता है। शरीर शून्य पड़ता जाता है और उससे वह सहज २ अपने आपको सकोडता है। आंखों में रहने वाला विश्व तैजस से मिलता है तब इसकी आंखें निठरती हैं नाड़ियें ऊपर चढ़ जाती हैं। यह अपने आपको शून्य में जाता हुवा अनुभव करता है मानों मेरा नाश होता है मैं किसी में समाता हूं मुमुर्षु के सम्बन्धि उसके चहुँ ओर बैठे हुए कहते हैं कि "मुझे जानता है, मुझे जानता है"। जब तक वाणि मन में, मन प्राण में और प्राण परले देवता में लय नहीं होता तब तक जानता है। जब विश्व तैजस

से मिलता है और तैजस हृदयाकाश में उतरता है तब लोग कहते हैं कि इसके हृदय को देखो यहां कुछ गरमाई है या नहीं। अन्त में हृदय कमल का द्वार खुल जाता है और यह निकलता है। नेत्र द्वारा अथवा मुख द्वारा दशवें द्वार द्वारा जैसी उसकी उपासना और संकल्प होता है उसी इन्द्रिय के गोलक द्वारा निकलता है।

"अस्माल्लोकात्प्रैति स वायु मागच्छति"

जब इस लोक से प्रयाण करता है तब वायु लोक को प्राप्त होता है।

"यमेन वायुनो सत्य राजन्"

यम नाम वायु लोक का है जिसको भुवर्लोक भी कहते हैं। मरते समय के चार दृष्टान्त ग्रन्थों में दिये गये हैं जैसे तृण जलायुका. जोख पहले अगले दो पैरों से दूसरी वस्तु को आलम्बन कर पीछले दो पैरों को खींच लेता है ठीक इसी प्रकार यह जीवात्मा सूक्ष्म शरीर को धारण कर स्थूल शरीर को छोड़ देता है जैसे चलता हुआ पुरुष अगले पैर को आगे रख दूसरे को उठाता है। इसी प्रकार से जीवात्मा सूक्ष्म शरीर को धारण कर स्थूल शरीर को छोड़ता है। सूक्ष्म शरीर दशेन्द्रियों की शक्ति, पांच प्राण, मन बुद्धि चित्त अहंकारदि चार अन्तः करण इन उन्नीस तत्वों का बना हुआ है सूक्ष्म ज्योति रूप है इसका रंग तीजों का सा या दीवे की शिखा को लाली की भान्ति है। वा घूसरी ऊन की भान्ति है। यह स्वप्न में शरीर के बायें ओर से निकस कर भ्रमण करता है कभी हितानाँ नाड़ी में बैठ कर दृष्ट श्रुत वासनाओं द्वारा नदी पर्वतादि नाना विश्व को रच

लेता है। यह इस स्थूल शरीर से सुन्दर, शक्ति शाली, और पवित्र है। जब मनुष्य को अच्छे और नये कपड़े पहनने को मिल जाते हैं तब वह पुराने कपड़ों को खुशी से छोड़ देता है ऐसे ही जीर्ण हुए शरीर को त्याग नये शरीर को धारण करता है। जैसे पुराने टूटे फूटे गहनों से सुनार नये गहने बनाता है ऐसे ही मृत्यु नया और सुन्दर जीवन देती है। जब फटी पुरानी पुस्तक की नई जिल्द बन्ध जाती है तब वह बहुत दिन चलती है ऐसे ही मरण के पश्चात् उसको दृढ और सुन्दर शरीर मिलता है और से उसकी आयु स्थूल शरीर से दुगनी होती है। फिर उससे भी मरता है तब आकाश लोक को प्राप्त होता हैं जिसको दिव और स्वर्ग लोक भी कहते हैं। वहां विश्व और तैजस संज्ञक जीवात्मा प्राज्ञ में मिल जाते हैं इस जन्म म इसकी चौगनी आयु होती है इसी प्रकार सूक्ष्म और ऊंची आनन्द को अवस्था को यह जीव प्राप्त होता चला जाता है। ऐसे ही ऊपर सात लोक और सात शरीर हैं उनके द्वारा उनका भोग करता हुवा परम पद को प्राप्त हो जाता है। मर के फिर जन्म नहीं लेता। इस अवस्था में मृत्यु से डरना नहीं चाहिए मृत्यु के समय मृत्यु का देवता उसकी उन्नति के लिए बैठा है।

स यत्राऽयमात्माऽबल्यं न्येस्यसंमोह मिव न्येत्यथै नमेते प्राणा अभिसमायन्ति स एतास्तेजो मात्राः समभ्याददानो हृदयमेवान्वधक्रामति स यत्रैष चाक्षुवः पुरुषः पराङ् पर्यावर्ततेऽथारूपज्ञो भवति ॥ १ ॥

एकी भवति न पश्यतीत्याहुरेकी भवति न जिघ्रतीत्याहुरेकी भवति न रसयत इत्याहुरेकी

भवति न वदतीत्याहुरेकी भवति न शृणोतीत्याहुरेकी भवति न मनुत इत्याहुरेकी भवति न स्पृशतीत्याहुरेकी भवति न विजानातीत्याहुस्तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो वाऽन्येभ्यो वा शरीर देशेभ्यस्तमुत्कामन्तं प्राणोऽनूत्कामति प्राणमनूत्कामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्कामन्ति स विज्ञानो भवति स विज्ञानमेवान्वचक्रामति तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च ॥ २ ॥

तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वान्यमाक्रममाक्रम्यात्मान मुपसंहरत्येव मेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वा-ऽन्यमाक्रममाक्रम्यात्मा न मुपसंहरति ॥ ३ ॥

तद्यथा पेशसकरी पेशसो मात्रामुपादान्यन्नवतरं कल्याणतरं-रूपं तनुतएव मेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याऽविद्यां गमयित्वा-न्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गन्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्रह्मं वाऽन्येषां वा भूतानाम् ॥ ४ ॥

स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयो-ऽतेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोधर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदंमयोऽदोमय इति यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन अथो खल्वाहुः काममय एवायं पुरुष इति स यथा कामोभवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते ॥ ५ ॥

तदेष श्लोको भवति। तदेव सक्तः सह कर्मणेति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य। प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किंचिदेह करोत्वयम्। तस्माल्लोकात्पुनरैत्यस्मै लोकाय कर्मण इति नुकामयमानो ऽथाकामयमानो यो ऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ॥ ६ ॥

श्री गंगा जी ने शान्तनु राजा से कहा है कि जैसे किसी मनुष्य का सम्बन्धी जब कारागार में जकड़ा जाता है तब तो उत्सव और खुशियाँ मनाते हैं और जब कारागार से मुक्त होता है तब उसके लिए रोते पीटते हैं। ऐसे ही शरीर से युक्त होकर जन्मना कारागार में जकड़ना है और शरीर से वियुक्त मरना कारागार से छूटना है।

"एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्नेवानुविश्यति
न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति इत्यहोवाच याज्ञवालक्य"
"जात एव न जारते कोन्वेनं
जनयेत् पुनः विज्ञान मानन्दं ब्रह्म"
"आनन्दाद्धेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयत्यभिसंविशन्ति"।

इन्हीं भूतों से निकल कर इन्हीं में ही लय हो जाता है और मर कर दूसरा जन्म नहीं होता।

यह कभी भी उत्पन्न नहीं होता है और कोई भी इसके उत्पन्न करने वाला नहीं है और यह विज्ञान आनन्द मय ब्रह्म है ॥२॥

आनन्द से ही यह भूत उत्पन्न होते हैं और पैदा हुवे आनन्द से जीते हैं और फिर आनन्द में ही समाते हैं ॥ ३ ॥

जिस मरणे से जग डरे मोहि बड़ो आनन्द।
कब मरिहों कब पायहों पूरण परमानन्द ॥

(कबीर)

शंका:—इससे तो यह सिद्ध हुआ कि धर्म अधर्म और ज्ञान अज्ञान की उन्नति अवनति वृथा है सब ही प्राणी मुक्त हो जायेंगे ?

समाधान:—मुक्त होने में क्या सन्देह है। धर्माधर्म के फल को तो सूक्ष्म शरीरों में भोगते जायेंगे। उनके लिए नीचो योनियों में आने की आवश्यकता नहीं हम नहीं जानते कि सृष्टि की रचना, स्थिति, प्रलयादि का क्रम क्यों और कब से हुवा परन्तु यह जानते हैं कि सृष्टि की रचना एक गिरावट है परमात्मा से प्रकृति उत्पन्न हुई, प्रकृति से महतत्व उत्पन्न हुवा, महत्व से अहंतत्व, उससे आकाश आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से घास फूस, अन्नादि, उससे सूक्ष्म जन्तु और वृक्ष हुए, वृक्षों से रामजी की गायादिक पशु, जो आकों पर रहते हैं, उनसे बड़े पशु और उससे मनुष्य उत्पन्न हुवा। पहले पेट के बल चलने वाले सर्पादिक हुए, उनसे उन्नत पक्षादिक हुए जो चारों पैरों से चलने वाले है। घुटनों पर हाथ रख जिस प्रकार मनुष्य झुक जाता है इसी भाँति पेट के बल पड़े हुयों की अपेक्षा उन्नत हुए और उनसे सीधा खड़ा हुवा ऊपर को देखने वाला मानव हुवा उसके बाद चारों ओर देखने वाले भूत, प्रेत, गन्धर्व, किन्नर, देवता पितर इत्यादि कर्मानुसार उन्नति करता हुवा चला जावेगा।

प्रश्न:—मनुष्यों के मरने के बाद उसके जीव की क्या और कैसी गति होती है।

उत्तर:—उसकी तीन गति है। प्रथम जैसे तेली के बैल को जो अपने जीवन में सहस्रों कोष का मार्ग चलता है परन्तु रहता है वहां का वहीं। ऐसे ही स्त्री, पुत्र धनादिकों में अनुरक्त हुए जीवन जीव मर मर करके वहीं जन्मते रहते हैं जैसे एक साहूकार ने कथा के अनुसार एक ही घर में बकरा, बैल, सांप, स्त्री, पुत्र, घोड़ी आदि योनियां धारण कर उसी घर में रहा। दूसरी घटी यन्त्र कूप की तरह जैसे नीचे से भरे आकर ऊपर खाली होते हैं और फिर भरने के लिए नीचे चले जाते हैं। ऐसे ही जीव यज्ञादिक पुण्य कर्मों के प्रभाव से स्वर्ग लोक को जाते हैं। और वहां कर्मों का फल भोग कर नीचे को आते हैं।

'पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापं उभाभ्यां मनुष्य लोकम्''

पुण्य कर्मों से देव योनियों को पाता है पाप से पश्वादि योनियों को। तथा पाप पुण्य दोनों बराबर होने से जीव मनुष्य योनि को प्राप्त होता है तीसरी जिनको तत्व मस्यादि महावाक्यों द्वारा ब्रह्म का साक्षातकार हो जाता है उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते वह ब्रह्म होकर ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। मनुष्य कर्म योनि है पशु और देवतादिक भोग योनि हैं मनुष्य शरीर में जैसा जीव कर्म करता है वैसा फल देव पश्वादिक योनियों में भोगता है। देवता और पशुवों को पाप पुण्य नहीं लगता। यदि ऐसा हो तो मनुष्य योनि से भोग योनि थोड़ी गणना में होनी चाहियें। परन्तु हम देखते हैं कि

एक ग्राम की चींटीयों और मच्छरों के बराबर समस्त संसार के मनुष्य नहीं हैं। इससे यही समञ्जस प्रतीत होता है कि निम्न अवस्था में अनन्त जीव हैं जो उन्नत अवस्था के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। पूर्व समय में उन्नति करते २ पशुओं से मनुष्य बने हैं। कितने ही बन्दरों से और कितने ही मच्छरों से और कितने ही और दो योनियों से भी मनुष्य योनि को प्राप्त होकर उन्नति करते गये हैं। मनुष्य योनि संख्या में थोड़ी है और मुक्ति का द्वार है। जैसे किसी बड़े अहाते में एक ही द्वार हो और सहस्त्रों अन्धे मनुष्य उसमें से निकलने का यत्न करते हों, जो भ्रमण करते २ ठीक दरवाजे के सन्मुख गति करते हैं वह निकल जाते हैं दूसरे यत्न करते रहते हैं और थोड़े २ निकलते रहते है। ऐसे ही ८३९९९९९ योनियों में से मनुष्य शरीर को प्राप्त होते रहते हैं और उसके द्वारा उन्नति करते हुए मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

—: × :—

कथं बिना रोम हर्षं, द्रवता चेतसा बिना।
बिना नन्दाश्रु कलया, शुध्येद्भक्त्या बिनाशय: ॥

बिना रोमांच हुए, बिना चित्त के द्रवि भूत हुए बिना आनन्द के अश्रुपात हुए भक्ति किस प्रकार जानी जावे और भक्ति बिना अन्त: करण किस प्रकार शुद्ध हो ॥ १ ॥

वाग् गद् गदा द्रवते यस्य चित्तं,
रुदंत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।

विल्लज्ज मुद्गायति नृत्यते च,
मद्भक्ति युक्तो भुवनं पुनाति ॥ २ ॥

जिस पुरुष की वाणी गद्गद् और चित्त पुनः २ द्रविभूत हो जावे तो लाज छोड़कर कभी रोवे कभी हंसे, कभी ऊँचे स्वर से गावे कभी नृत्य करें, वह भक्ति युक्त पुरुष संसार को पवित्र करता है ॥ ३ ॥

यथा अग्निना हेम मलं जहाति,
ध्यातं पुनः स्वभजते स्वरूपम् ।
आत्मा च कर्मानुशयं विधय,
मद्भक्ति योगेने भजत्यथोमाम् ॥ ३ ॥

जैसे—अग्नि में तपाने से सुवर्ण अपने मैल को छोड़कर अपने वास्तविकरूप को धारण करता है। इसी प्रकार चित्त भी भक्ति योग द्वारा वासना को त्याग कर मद्रूप हो जाता है ॥ ३ ॥

यथा यथात्मा परि मृज्यतेऽसौ,
मत्यपुण्य गाथा श्रवणभिधानैः ।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं
चक्षुर्यथैवांजन संप्रयुक्तम् ॥ ४ ॥

जितना २ यह मन मेरी कथा के श्रवण और कीर्तन से शुद्ध होता है, उतना ही उतना अंजन से शोधित हो नेत्र की नाईं शुद्ध वस्तु को देखता है ॥ ४ ॥

विषयान ध्यायतश्चित्तं, विषयेषु विषज्यते ।
मामनुस्मर नश्चित्तं, मय्येव प्रविलीयते ॥ ५ ॥

विषयों का ध्यान करने से चित्त विषयों में लग जाता है। और मेरा स्मरण करने से चित्त मेरे में ही लीन हो जाता है ॥ ५ ॥

परन्तु जब भक्ति भावना तीव्र होगी यह दशा स्वयं प्राप्त होगी इसका प्रयत्न करने से कुछ प्राप्त नहीं होगा इसलिए उपासक को चाहिये कि दृढ़ अभ्यास और वैराग्य द्वारा अपने चित्त को बाहर से पुनः २ खींचकर उपास्य देव में लगावे ज्यों २ अभ्यास बढ़ेगा शरीर की आप विस्मृति होती जावेगी फिर रोना हंसना उच्च स्वर से गाना वा नृत्य करना आदि जैसे महाप्रभु चैतन्य को होता था स्वतः होगा। अन्तः करण समान नहीं किसी का चित्त थोड़ी सी बात में द्रवीभूत हो जाता है किसी के अन्दर भक्ति भाव होने पर भी उसका बाहिर कोई आकर नहीं दिखाई पड़ता। यदि बिना इस अवस्था के स्वयं प्राप्त हुए रोया, गाया, नाचा, जावेगा तो उससे उभय भ्रष्ट होगा। इसमें सन्देह नहीं कि भक्ति भाव के तीव्र होने पर लौकिक मर्यादा की परवाह नहीं रहती। भक्त प्रिय से प्रिय पदार्थों को भी यदि वह उसके मार्ग में कुछ भी विघ्नकारी हो छोड़ देता है। मीरां बाई ने अपने पति और राज्य को, महा प्रभु चैतन्य ने अपने कुटम्ब और पाण्डित्य को, नरसी महता ने अपने सारे धन को, तुलसीदासजी ने अपनी अत्यन्त प्रिय स्त्री को अपनी भक्ति में विघ्न जानकर त्याग दिया। और २ भक्तों की भी यही दशा हुई। परन्तु यह त्याग बिना अकृत्रिम प्रेम के नहीं बन सकता। यदि ऐसे लोग, कोई लोक बाह्य चेष्टा भी करें तो उनको हानि नहीं जिनका भाव ऐसा दृढ़ नहीं हुआ उनको ऐसी चेष्टा करनी बुरी है।

प्राचीन समय में व्यास, नारद, हनुमान, प्रहलाद, भीष्म, शंकर, उद्धवादि कुछ कम नहीं हुये परन्तु वह कोई चेष्ठा लोक बाह्य नहीं करते थे। निःसन्देह इन महापुरुषों को पूरा वैराग्य, पूरी ईश्वर भक्ति थी। परन्तु वह लोक मर्यादा का बराबर पालन करते थे। ईश्वर में दृढ़ भावना और उसके निरन्तर चिन्तन और संसार के वैराग्य के साथ लोक संग्रहार्थ कर्म किया जाना सर्वथा असम्भव नहीं जहां गंगा जी बहुत गहरी होती है वहाँ ही जल चलता प्रतीत नहीं होता। क्रुद्धों पर क्षमा, दुःखियों पर दया, धर्म शीलों से संतोष, निष्काम कर्म में तत्परता, सब के हित का चिन्तन अपने इष्ट देव में सच्चा प्रेम यह सच्चे भक्त के लक्षण हैं उससे बुरा काम कभी हो नहीं सकता, न उसको किसी से द्वेष होता है, न राग, सदा संतुष्ट, सदा समुचित हर्ष विषाद से रहित, न उसको किसी से भय है न उससे किसी को भय है, शत्रु, मित्र, मान, अपमान, निन्दा, स्तुति, सुख, दुःख, सब में समान यथा प्राप्त में संतुष्ट, शोच, उद्वेग, आकांक्षा, मान मत्सर से रहित, स्थिर चित्त, परम श्रद्धालु, ऐसे भक्त ही भगवत और लोक दोनों के प्रिय होते हैं।

—:×:—

ब्रह्म दृष्टि रुत्कर्षात्।

अर्थात् प्रतीक में ब्रह्म दृष्टि हो, ब्रह्म में प्रतीक भावना मत करो। अहं ग्रह उपासना के सम्बन्ध में यूं लिखा है।

आत्मेति तूप गच्छन्ति ग्राहयन्ति च॥

ब्रह्ममीमाँसा ४, १, ३,

अर्थात् ब्रह्म को अपना आत्मा (अपना आप) बारम्बार चिन्तन करो वेद का यही मत है और यही उपदेश। इन दोनों प्रकार की उपासना में अभिप्राय और लक्ष एक ही है, वह क्या है ?

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जालानिति शान्त उपासित्।

ठंडी छाती से अन्दर बाहर ब्रह्म ही ब्रह्म देखो।

अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः॥

जैसा भी पुरुष का विचार और चिन्तन रहता है वैसा ही वह अवश्य हो जाता है तो ब्रह्मचिन्तन ही क्यों न दृढ़ किया जाय। अर्थात् अपने आपको ब्रह्मरूप ही क्यों न देखते रहें। इसी पर श्रुति का वचन है।

"ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति"

अहंग्रह और प्रतीक उपासना दोनों में नाम रूप संसार (वृत) को मिटाना इष्ट होता है बनाना नहीं। जल ब्रह्म है, स्थल ब्रह्म है, पवन ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है, गंगा ब्रह्म है, इत्यादि प्रतीक उपासना का रूपदर्शक वाक्यों में जल, पवन, आकाश आदि के साथ ब्रह्म को कहीं जोड़ना (संकलन करना) नहीं है जैसे यह सर्प काला है। इसमें सर्प भी रहे हैं और काला भा। किन्तु यहां तो बाध समानाधिकरण है, जैसे किसी भ्रांति वाले को कहें यह सर्प रस्सी है, यहां रस्सी काले रंग की तरह सर्प के साथ समान सत्ता वाली नहीं है। किन्तु रस्सी ही है सर्प नहीं, इसी तरह सच्ची उपासना वह है कि धारा रूप जल, दृष्टि में न रहे ब्रह्मचित में समा जाये, स्वयं रूप पवन दृष्टि से गिर जाये।

ब्रह्मसत्ता मात्र भान हो । प्रतिमापन उड़ जाय । चैतन्यस्वरूप भगवान को झांकी हो जैसे किसी प्रेम के मतवाले घायल ने प्यारे का प्रेम पत्र पढ़ा उसकी दृष्टि ता प्यारे के स्वरूप से भर गई अब पत्र किस को दीख पड़े। गोपियां उद्धव को कहती हैं, यह पाती अब कहां रक्खें, छाती से लगाती हैं तो जल जायगी आंखों पर धरती हैं तो गल जायगी । उपासना में मगन होने के लिये इन्द्रिय ज्ञान तो एक छेड़ जैसी रह जायगी। प्यारे ने चुटकी वस्तुः कोई चोज नहीं है प्यारा ही वस्तु रूप है । इसी तरह सब इद्रियों का ज्ञान एक ही एक ही एक प्यारे को छेड़ छाड़ रूप प्रतीत हो "आई ठुमक ठुमक लाई बुलावा श्याम का" भाई उपासना तो इसी का नाम है जिसमें जवान ने तो क्यों हिलना है शरीर की हड्डी और नाड़ी तक के परमाणु २ हिल जायें। ये नहीं तो आंख मून्दो नाक मून्दो, कान मून्दो, मुख मुन्दो गावो चाहे चिल्लावो तुम्हारी उपासना बस एक चित्र रूप है जिसमें जान नहीं बड़ा सुन्दर चित्र सही रवि वर्मा का मान लो, पर खाली तस्वीर से क्या है पदार्थों में इस ब्रह्म दृष्टि को दृढ़ करना और विषय भावना को मिटाना रूपी उपासना, कुछ वैसा अध्यारोप कल्पना शक्ति को बढ़ना और वर्त्तना न जान लेना जैसा सतरंज में काठ के टुकड़ों को बादशाह, वजीर, हाथी, घोड़ा, प्यादा मान लेते हैं।

जल ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है, प्राण ब्रह्म है, अग्नि ब्रह्म है, मन ब्रह्म है. इत्यादि उपासना के रूप तो अवस्तु को मिटा कर वस्तु भावना जमाते हैं यदि यह खाली मान लेना, और कल्पना

मात्र भी हो तो वैसी कल्पना है जै बालक गुरु जी के कहने से गुणा करने और भाग देने की रीति को मान लेता है भाग देने गुणा करने की यह विधी क्यों ऐसी है और क्यों नहीं इस रीति द्वारा उत्तर के ठीक आ जाने में कारण क्या है। यह बातें तो पीछे आयेंगी जब बीज गणित एलजबरा पढ़ेगा परन्तु उस गुरु की रीति पर विश्वास करने से उदाहरण सब अभी ठीक निकलने लग पड़ेंगे। पर खबरदार गुरु जी के बतायी हुयी गुरु रीति को ही और का और समझ कर मत याद करो।

प्रतिमा क्या है जिनसे मान निकाला जाय मापा जाये, तोला जाये जब तोलने का बट्टा छोटा हो तो तोल का मान बड़ा होता है। जैसे तोलने का बट्टा एक पाव होने पर यदि किसी चीज का मान चार हो तो बट्टा एक छटांक होने पर मान सोलह होगा अब हिन्दू धर्म के यहां प्रतीक और प्रतीमा क्या थे। ईश्वर को तोलने का बट्टा हिन्दू धर्म में अति उच्च सूर्य चन्द्रमा रूपी प्रतीक भी है। इससे उतर कर गुरु ब्राह्मण रूप हैं जो गरुड़ रूप भी अश्वत्थ वृन्दा रूप भी कैलास गँगा रूप भी, और भी प्रतीक रूप भी, और ठिगने से गोल मोल वाले पत्थर को भी प्रतिमा प्रतीक रूप स्थापित कर दिया है यह छोटे से छोटा प्रतीक क्या परमेश्वर को तुच्छ बनाने के लिए था। नहीं जो प्रतीक का छोटा करना इस लिए था कि ईश्वर भाव और ब्रह्म दृष्टि समुद्र बह निकले जब उस नन्हें से पत्थर को भी ब्रह्म देखा तो बाकी अखिल पदार्थ और समस्त जगत तो अवश्य मेव ब्रह्म

रूप भान हुआ चाहिए। परन्तु जिसने मूर्ति पूजा इस समझ से की कि यह जरासा पत्थर ही ब्रह्म है तो वह हो गया पत्थर का कीड़ा।

* मृत्यु *

ज्ञानवान् पुरुष कहते हैं कि जितने शरीर धारी हैं मरना उनका प्रकृति स्वभाव और जीना विकृति विकार है तस्मात् मनुष्य का श्वास क्षण मात्र जितना चलता है उतने ही को महान लाभ समझना चाहिए लड़कों को अन्धेरे में जाने से डर लगता है मनुष्य को वैसे ही मृत्यु से डर लगता है और जिस प्रकार लड़कों का स्वाभाविक डर कथा कहानी आदि के सुनने से बढ़ता है उसी प्रकार मनुष्यों का डर मृत्यु विषक वार्ता सुन २ कर बढ़ता है यथार्थ में मृत्यु को ईश्वर ने किये हुए अपराधों से मुक्त होने के लिये स्वर्ग में जाने के द्वार रूप बनाया है अतः उसे पवित्र और धर्म समझना चाहिए परन्तु "आया है सो जायगा" इस प्रकार को चिन्तना करके मृत्यु से डरना अविवेकता का लक्षण है तथापि बहुधा मनुष्य मरने के विषय में नाना प्रकार के तर्क बान्धते हैं तपश्चर्या सम्बन्धी प्राचीन पुस्तकों में लोगों ने लिख रक्खा है कि तुम अपनी हाथ की एक उंगली को जला कर तथा अन्य किसी प्रकार से पीड़ित करके देखो तुम्हें कितनी वेदना होती है और उस वेदना से मृत्यु की वेदना को जब कि समस्त शरीर का पात और पृथक कारण होता है कल्पना करो परन्तु इस प्रकार का तर्क समंजस नहीं कहा जा सकता क्योंकि मरते समय

इतना भी क्लेश नहीं होता जितना शरीर के एक अवयव के कट जाने अथवा पीडित होने से होता है कारण यह है कि किसी २ मर्म स्थान तक वेदना के पहुँचने के लिए कभी २ उसका वेग जाता रहता है एक तत्त्ववेत्ता ने बहुत ठीक कहा है कि मृत्यु की अपेक्षा मृत्यु काल का उपकरण अधिक भयंकर लगता है मरते हुए का कराहना और प्रेत संस्कार की विधि इत्यादि को देखकर मनुष्य का भय भीत हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं एक बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि मनुष्यों में ऐसे विकार हैं कि जिनके जागृत होने से मृत्यु तृण प्राय हो जाता है अतः मनुष्यों में जब इस प्रकार के अनेक विकार जागरित हों तो मृत्यु से इतना कदापि न डरना चाहिए देखिये बदला लेने के समय मनुष्य मृत्यु को कुछ समझता ही नहीं प्रम में मत्त होने से मनुष्य मृत्यु का तिरस्कार करता है अकीर्ति से बचने के लिए मृत्यु को मनुष्य मन से चाहता है दुःख में मनुष्य मृत्यु को घर बैठे बुलाता है और भय के मारे भीरु मनुष्य अपने को अपने ही हाथ से मृत्यु के अर्पण कर देता है इतना ही नहीं कभी २ दूसरों के दुःख को देख कर भी मनुष्य अपने प्राण दे देता है रोम के ओथो नामक राजा ने जब अपने हाथ से अपने को मार डाला तब उसके अनेक सच्चे मित्र और अनुयायियों ने राज भक्ति और स्नेह को दिखाने ही के लिए प्राण परित्याग किये यह विचार करके मनुष्य को मृत्यु से डरना नहीं चाहिए। सर्वदा उस अन्तर्यामी भगवान् का ध्यान करते हुए इस मनुष्य शरीर में ही धर्मार्थ काममोक्ष की सिद्धि के लिए यत्न करना चाहिए।

* ईश्वर का साक्षात्कार *

इस संसार में अनेक लोगों को यह शंका हुआ करती है कि ईश्वर क्या है ? उसका क्या स्वरूप है ? उसको कैसे पहचान सकते हैं ? श्रुति कहती है कि ईश्वर सर्व व्यापक है जिस प्रकार से फूल में गन्ध है विश्व में वायु है, दूध में घृत है, काष्ठ में अग्नि (वह्नि) है वैसे ही वह ईश्वर परमात्मा चराचर में व्यापत हो रहा है। यहां यह शंका स्वाभाविक हो जाती है कि फिर वह व्यापक ईश्वर एक स्वरूप में किस प्रकार देखा जा सकता है ? ऋषि, मुनि महात्मा ज्ञानी उस परमात्मा को निराकार निरवयव, अजर, अमर, सर्वव्यापक, सर्वगुण सम्पन्न कहते हैं। कोई उसे साकार तथा अनेक अवतारों का धारण करने वाला कहते हैं जैसा कि गीता में स्वयं भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं:—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब मैं अवतार धारण करता हूँ। वेद तो 'नेति, नेति' 'यह भी नहीं' 'यह भी नहीं' ऐसा कह कर ईश्वर के स्वरूप मात्र का ही निरादर करता है। हम एकांत स्थान में बैठकर शान्त चित्त से उस परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि 'हे प्रभो हम पर कृपा दृष्टि करो' तो जब निराकार, निरवयव, ईश्वर, हाथ, पैर, कान, आंख से रहित है तो वह हम पर किस प्रकार से कृपा दृष्टि कर सकते हैं ? इत्यादि शकायें आज कल ससार में बहुधा मनुष्यों को उठा करती हैं। परन्तु वास्तव में यदि देखा जाय तो यह

सारी कल्पनायें वृथा, निर्मूल तथा इस जीव की अधोगति करने वाली हैं। जब हम इस संसार की छोटी से छोटी वस्तु को पूरा २ नहीं जान सकते हैं तो वह ईश्वर जिसको वेद ,नेति नेति कहता है कैसे जान सकते हैं। फलों को हमने अनेकों बार खाया है, सूंघा है, देखा है उसका भी हमको पूरा ज्ञान नहीं हुआ है अपने हाथ पैर, चर्म, नखादि को नित्य प्रति देखते हैं परन्तु उनके भी स्वरूप का हम को पता नहीं लगा। जब ऐसी २ साधारण बातों का भी हमको यथार्थ ज्ञान नहीं है तो वह परमात्मा जो सच्चिदानन्द प्रभु जिसके समान कोई नहीं, जिसका न रूप हैं न रंग है, न नाम हैं, जो केवल अद्वितीय है, जो इन चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं देता, जो शब्दातीत है, रूपातीत हैं, इन्द्रियातीत है, उसको जानने के लिए जब इस संसार रूपी सागर में गुरू रूपी नौका का ही अवलम्बन नहीं किया तो उसके तत्त्व को हम क्षुद्र प्राणी कैसे समझ सकते हैं ? कैसे जान सकते हैं ? कैसे देख सकते हैं यहां हम पाठकों के सामने एक कथा का उल्लेख करते हैं जिससे स्पष्ट हो जायेगा।

एक समय एक नगर में एक विद्वान् गुणज्ञ, शास्त्र वेत्ता, सदाचारी राजा को ईश्वर के रूप के दर्शन की लालसा लगी। उसने मन में विचार किया कि जो पण्डित, ज्ञानी, सन्त महात्मा मुझे पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के दर्शन करा दे तो मैं यह समस्त राज्य पाट उनके चरणों में अर्पण कर सर्वदा उन्हीं के पाद कमलों की सेवा किया करूं[illegible] विचार करके उसने सारे नगर में ढिंढोरा

पिटवा दिया। तत्पश्चात्, अनेक साधु महात्मा, पण्डित ज्ञानी आने लगे उनसे राजा यही प्रश्न करता कि—"कि क्या आप ईश्वर को जानते हैं? क्या वह है? यदि है तो कैसा है? यदि आप यह नहीं बता सकते तो मानना पड़ेगा कि वह नहीं है। फिर न पाप है न पुण्य है, न दान है न धर्म, किस का भजन? किस की पूजा? जप तप सब वृथा है। राजा का प्रश्न अति गूढ था। विश्व में रहते हुए जीव अपना तो स्वरूप जानते हो नहीं फिर ईश्वर का स्वरूप कैसे जानें। वह पण्डित आत्मा परमात्मा को जानने वाले, द्वैताद्वैत के रहस्य से शून्य सत् चित् आनन्द, घन ऐसे परमात्मा को सत् असत् से विलक्षण अन्य पदार्थ के समान दृष्टि से अगोचर बतलाने का प्रयत्न करते परन्तु वह भेद रहित ब्रह्म का प्रतिपादन करने में असमर्थ थे। जो जो पण्डित उसको शंका निवारण करने में असमर्थ होते थे उन २ को वह राजा कैद कर देता था। इस प्रकार से उसने बहुत से ऋषि, मुनि, पण्डितों को कारावास में भेज दिया। जिस मनुष्य ने गुरु मुख से आत्मा परमात्मा के भेद को न जाना हो, ज्ञानामृत का पान करके तृप्त नहीं हुआ हो, बाह्य इन्द्रियों को अन्तरात्मा में लीन नहीं किया हो वह मनुष्य चाहे अनेक शास्त्रों का ज्ञाता भी क्यों न हो उस परमात्मा के वास्तविक तत्त्व को नहीं पहचान सकता इस प्रकार से बहुत दिन व्यतीत हो गये। तत्पश्चात् अष्टावक्र योगी एक साधु के वेश में उस राजा के दरबार में पधारे। साधु की उज्ज्वल काणित, तपोबल और तेज को देखकर राजा दिङ्विमूढ़

हो गया । परन्तु शीघ्र ही उठकर महात्मा को प्रणाम किया महात्मा ने कहा हे राजन् मैं तुझे परमात्मा का दर्शन कराने आया हूँ । राजा ने उत्तर दिया महाराज आप मेरी प्रतिज्ञा को जानते हैं मैं जो मुझे ईश्वर का साक्षात्कार करावे उनके चरणों में अपना समस्त राज पाठ अर्पण कर दूंगा और जो असमर्थ होता है उसको मैं सदा के लिए कारावास में भेज देता हूँ। महात्मा ने कहा तेरे राज पाठ को मुझे आवश्यकता नहीं तू आज के आठवें दिवस को अपने नगर के सब सेठ, साहूकार, पण्डित जौहरियों की सभा कर और जिन महात्मा पुरुषों को कारागृह में डाल रक्खा है उनको भी उस सभा में बुलाना और आज ही से जो तैंने अपनी मूर्खता से उनको कारागृह में डाल रक्खा है छोड़ दें। यह कह कर योगी अन्तर्धान हो गये । आठवें दिन राजा का दर्बार ऋषि, मुनि, पण्डित, जौहरी तथा साधारण मनुष्यों से भर गया। जिस प्रकार से चकोर चन्द्रमा की ओर टकटकी लगाये देखता है उसी भांति सब की दृष्टि योगि राज की ओर लगी हुई थी । राजा ने महापुरुष से कहा कि हे योगीन्द्र ! मुझे परमात्मा का साक्षात्कार करावो। योगीराज ने सभा में बैठे हुए पदाधिकारियों के गलों में से हार लेकर जौहरियों के सन्मुख रक्खे कि इनका मूल्य बताओ । सब जौहरियों ने अपनी २ बुद्धि से यह नीलम एक लाख का है, यह हार एक करोड़ से कम का नहीं हो सकता इत्यादि २ बाते बताई। योगीन्द्र ने कहा कि तुम इनकी परीक्षा करना भली भांति जानते हो तो

सब से एक स्वर ने उत्तर दिया कि हां महाराज हम बराबर जानते हैं। यह सुनकर योगीराज ने विकराल रूप धारण किया और जौहरियों से कहा कि हमको यह परीक्षा करना अभी सिखा दो अन्यथा सबको अभी भस्म करता हूँ यह सुनकर एक वृद्ध निपुण जौहरी ने उत्तर दिया कि महाराज चाहे आप हमें अभी भस्म कर दें परन्तु तत्काल आपको यह परीक्षा सिखाने में असमर्थ हैं हम वंश परम्परा से यह कार्य करते हैं हम भी करते २ श्वेत हो चले परन्तु पूरी परीक्षा शक्ति अब भी हम में नहीं है, तो जिसने कभी लाल, नीलम देखे ही नहीं वह तुरन्त इस परीक्षा को कैसे सीख सकता। राजा ने कहा महाराज इनके बाप दादा इस कार्य को करते रहे हैं और यह भी बचपन से इस काम को करते हैं तब कुछ इन्हें इनकी परीक्षा का भेद प्रतीत हुआ है आप तुरन्त के तुरन्त इसे कैसे सीख सकते हैं। योगीन्द्र को इतना चाहिए था पुनः सोम्य दृष्टि धारण कर कहने लगे कि राजन्! यह नाम रूप रंग वाला एक जड़ पत्थर है जिसको देख सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं जब उसकी परीक्षा भी अभी को अभी नहीं बतलाई जा सकती तो वह परब्रह्म परमात्मा जो नाम रूप, रंग से रहित है जो चर्म चक्षुओं का विषय नहीं जिसको वेद भी 'नेति नेति' ऐसा कहते हैं अरे मूढ! उसका तत्काल साक्षात्कार कराना यह कैसे सम्भव हो सकता है।

इस दृष्टान्त से यह बात समझी जा सकती है कि जो मनुष्य यह शंका करते हैं कि यदि परमात्मा है तो हमें दिखलाओ

वह तत्काल अपने चर्म चक्षुवों से उसको किस प्रकार देख सकते हैं। ईश्वर नेत्रों का विषय नहीं है वह तो प्रेम का विषय है। जहां प्रेम है वहां भगवान् हैं। प्रेम के लिए आवश्यक है कि ईश्वर का ज्ञान हो। ज्ञान से अज्ञान के कर्म की निवृत्ति होती है। कर्म का हेतु अध्यास, है अध्यास का कारण अविद्या है अविद्या को दूर करने के लिए तत्त्व मस्यादि' वाक्यों का विशुद्ध अन्तःकरण में ज्ञान होना चाहिए। वह ज्ञान विना सद्गुरु की कृपा के अनेक शास्त्रों को कण्ठस्थ कर लेने पर भी असम्भव है। अतः परमात्मा के साक्षात्कार के लिए यह परमावश्यक है कि यह सद्गुरु की शरण में जावे श्री भगवान् गीता में कहते हैं कि:—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः॥

उस ज्ञान को तू सद्गुरुवों को साष्टांग प्रणाम से पुनः पुनः प्रश्न करने से तथा सेवा से प्राप्त कर। वह तत्त्व दर्शी ज्ञानी तुझे उस परमात्मा का उपदेश करेंगे। आगे चलकर भगवान् स्वयं कहते हैं।

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्व मिदं प्रोतं सूत्रे मणि गणा इव॥

हे अर्जुन मेरे सिवाय इस संसार में कुछ भी नहीं है। जैसे एक धागे में कई दाने पिरोये रहते हैं उसी प्रकार यह समस्त जगत् मुझ में है और मैं इस सारे जगत् में हूं।

यो यां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति॥

जो सब में मुझे देखता है और सबको मुझ में देखता है उससे मैं दूर नहीं हूँ और वह मुझ से दूर नहीं है। मुझको देखता है उससे मैं दूर नही हूँ और वह मुझ से दूर नहीं है।

—: ०×० :—

* उपासना के भेद उसकी विधि *

उपासना व्यक्त अव्यक्त—सगुण और निर्गुण रूप से होती है। परन्तु वास्तव में निर्गुण उपासना ध्यान है उपास्य उपास भेद दूर हो जाने से उपासना जो द्वैत में ही बन सकती है नहीं कह सकते। सामान्य पुरुष के लिए उपासना का प्रारम्भ स्थूल अर्चना से होना चाहिए क्योंकि क्रमारोहण से ही सिद्धि होती है। मनुष्यों के चित्त प्रायः चंचल होते हैं और बहुतों का बाह्य अर्चना बिना काम नहीं चल सकता परन्तु उस अर्चना में सात्विक भाव होना चाहिए राजसी तामसी न हो, न वह लोक यश अथवा कीर्त्ति के लिए हो लोलानुकरण उत्सवादि भी यदि शुद्ध बुद्धि से किये जावें तो उनका भी फल अवश्य होता है परन्तु वर्त्तमान समय में प्रायः ऐसा देखने में नहीं आता और सच्चे सगुणोपासक भी वैसे दुर्लभ है जैसे सच्चे निर्गुणोपासक अथवा योगी। मन्दिरों की कमी नहीं, उनमें हजारों रुपया लगा कर नित्य प्रति बड़ी धूमधाम से उत्सव होते हैं, बड़ी २ सामग्री दीख पड़ती है, रासलीला रामलीला

सदा होती है राम राम–कृष्ण कृष्ण–शिव–शिव सब पुकारते हैं, परन्तु बहुधा चित्त पर इसका प्रभाव कम दीखता है।

उपासक को उचित है कि प्रथम अपने इष्ट देव की मूर्ति का जैसे शास्त्रों में वर्णन किया है ध्यान करे यदि प्रतिमा पूजन बिना चित्त न ठहरे तो उसी को पूजे। जो मूर्तियां मन्दिरों देवालयों में विद्यमान हैं उन्हीं में सात्विकी भाव से पूजा करने से चित्त की कुछ न कुछ शुद्धि अवश्य होगी। परन्तु उपासक यह कभी न समझें कि पत्थर या काष्ट की मूर्ति ही ईश्वर है किन्तु उसमें चेतन का आवेश करके उसका ध्यान करें। जब इस स्थूल मूर्ति की षोडशोपचार से शुद्ध भाव से पूजने से चित्त कुछ स्थिर होने लगे तो फिर उस आलम्बन को त्याग कर भगवत् की मूर्ति को अपने सन्मुख विद्यमान कल्पना की जावे वह सात्विक होनी चाहिए–यथा श्रीकृष्ण भगवान अथवा विष्णु भगवान् की श्याम-वर्ण प्रसन्न वदन, कमल नयन–उज्ज्वल ललाट कम्बुग्रीवा, विशाल वक्षस्थल, अष्ट अथवा चतुर्भुज मुकुट धारण किये हुए, मकराकार कुण्डलों से भूषित, पीताम्बर धारे, शंख चक्र गदा पद्म धारण किये शांत भक्तों पर अनुग्रह करने वाले। राजसी अथवा तामसी मूर्ति का ध्यान न करे–क्योंकि जैसी भावना की जावेगी वैसा ही चित्त हो जावेगा और राजसी और तामसी मूर्ति का ध्यान करने से चित्त शुद्ध होने के स्थान में और मलिन होगा-इसी ध्यान के साथ भगवत् के गुणों का भी चिन्तन करे यथा विष्णु भगवान् के ध्यान में यह चिन्तन करे कि वह कैसे जगत् का

सृष्टि पालन कर्त्ता, अन्तर्यामी करुणामय, भक्तवत्सल, दीनबन्धु क्रोध मोह द्रोह रहित, नित्य शुद्ध रूप हैं। इस ध्यान से चित्त जो दर्पणवत् है काल पाकर उन गुणों को ग्रहण कर लेगा। यदि ध्यान के साथ "ओं नमो नारायणय" अथवा-

,ओं नमो भगवते वासुदेवाय" इस मन्त्र का जप भी किया जावे तो चित्त और भी शीघ्र शुद्ध हो जावेगा भगवन् के गुणों के श्रवण कीर्त्तन भजन का महात्म्य कौन वर्णन कर सकता है, उसके प्रभाव से अधम से अधम पापी से पापी भी शुद्ध होकर परम पद को प्राप्त हुए। जो फल बड़े २ यज्ञों से दानों से तीर्थ यात्राओं से, व्रतों से भी नहीं मिलता वह भगवद्भजन से प्राप्त होता है।

सा जिह्वा या हरि स्तौति।
तच्चित यत्तदर्पणम्।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ।
यौ यत्पुजा करौ करौ॥ १॥

जिह्वा वही है जो हरि भगवान् की स्तुति करें चित्त वही है जो उनके अर्पण हो और केवल वही हाथ सहराने योग्य हैं जो उनकी पूजा में तत्पर हों"-जिन भगवान् के स्वप्न में भी नाम लेने से पाप राशि से छूट जाता है उनके प्रत्यक्ष ध्यान व गुण कीर्त्तन के महात्म्य का तो कथन ही क्या है—सब शास्त्रों को खोज कर और पुनः २ विचार कर सब सज्जन महात्माओं का यही अनुभव हो रहा है और केवल इतना सार निकला है कि हरि भगवान् का सदा ध्यान करो। जिसके चित्त में हरि भगवान्

बसे हैं उसके लिए कलियुग भी सतयुग है जहां हरि भगवान् नहीं वहाँ सतयुग भी कलियुग है।

तज्ज्ञानं यत्र गोविन्द साकथा यत्र केशवः ।
तत्कर्म यतदर्थाय किमन्यैर्बहु-भाषितैः दरुड पुराण ॥

वही ज्ञान है यहां गोविन्द भगवान् हैं वही कथा है जहां केशव हैं वहीं कर्म है जो उनके निमित्त हैं और बहुत भाषण से क्या प्रयोजन है।"

शिवजी के ध्यान के विषय में शंकर भगवान् कहते हैं।

पशूनां पति पाप नाश परेशं ।
गजेन्द्रस्य कृत्ति वसानं वरेण्यं ॥
जटा जूट मध्ये स्फुरद गंगा वारिं।
महादेव मेकं स्मरामि स्मरामि ॥
न भूमिर्नचापो न वह्निर्नवायु न ।
चाकाश मास्ते न तन्द्रा न निद्रा ॥
न ग्रीष्मो न शीतं न देशं न वेषो।
न यस्यास्ति मूर्त्तिस्तिन मूर्त्ति तमीडे ॥

पशुओं (प्राणियों) के पति पाप के नाश कर्त्ता—परमेश्वर, व्याघ्र, चर्मधारी सब के प्रार्थनीय-जिनकी जटा जूट के मध्य में गंगा जी स्फुरण कर रहीं हैं ऐसा एक महादेव का मैं स्मरण करता हूँ ॥ १ ॥

जिनके न भूमि है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है न आकाश है, न ग्रीष्म है, न शीत है, न देश है, न वेश है, न मूर्त्ति है, ऐसे त्रिमूर्त्ति भगवान् की स्तुति करता हूँ यह ध्यान योगियों के योग्य है। जब यह धारणा ऐसी दृढ़ हो जावे कि बोलने अथवा अपनी इच्छा पूर्वक और कर्म करते चित्त से उपास्य देव की मूर्त्ति कभी हटे तो इसी धारणा के परिपासक से ध्यान और ध्यान के परिपक्व होने से समाधि होती है। इस भक्ति भाव के बाहिर का एक चिह्न शरीर की विस्मृति कही जाती है।

—:×:—

* श्री स्वामी शंकराचार्य जी के चार मठ *

श्रुतिः स्मृतिः पुराणाना
मालयं करुणालम्।
नमामि भगवद्पादं
शंकरं लोक शंकरम्॥

जगद्गुरु श्री मच्छंकराचार्य ने युधिष्ठिर के छब्बीससो इकत्तीस सम्वत् आज से तेईससो बानवें वर्ष पहले वैसाख शुक्ला पंचमी के दिन दक्षिण प्रदेश के केरल राज्यान्तर्गत कलटा ग्राम वासी द्रविड़ ताम्बूली श्री शिव गुरु नानक ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री श्री सती देवी के गर्भ से जन्म धारण कर समस्त भारत का तथा वैदिक धर्म का सब विश्व में प्रचार किया। भारत वर्ष से

नास्तिक मत का निराकरण कर वैदिक धर्म का पुनः स्थापन किया था। उन्होंने प्रचारार्थ भारत वर्ष के चहुँ ओर चार मठ स्थापित किये। उन मठों को चार सम्प्रदाय और उनके जितेन्द्रिय योगी विद्वान संन्यासी धर्म प्रचारार्थ नियत किये जैसे पूर्व दशा में गोवर्धन मठ भोगवार सम्प्रदाय, वनारण्य सन्यासी पुरुषोत्तम क्षेत्र, जगन्नाथ देवता, विमला देवी, पद्मपादाचार्य, महोदधि तीर्थ, प्रकाशक ब्रह्मचारी, 'प्रज्ञान ब्रह्म' महावाक्य इनका वेद ऋगवेद, काश्यप गोत्र है। वन और आरण्य के और गोवर्धन मठ के यह देश अधिकार में रक्खें। अङ्ग वङ्ग कलिङ्ग, मगध, उत्कल बरवर

बननामा सन्यासो का अर्थः—

सुरम्ये निर्जने स्थाने वने वासं [करोति यः।
आशा पाश. विनिर्मुक्तो बन नामा स उच्यते॥

सुन्दर रमणीक एकान्त स्थान बन में, जो बास करता है, आशा के बन्धन से निर्मुक्त है वह बन नामा कहाता है। अरण्य का अर्थः—

अरण्ये संस्थिते नित्य मानन्दे नन्दने बने।
त्यक्त्वा सर्व मिदं विश्वं आरण्यं परिकीर्त्तिते॥

इस सर्व विश्व को त्याग कर नित्यानन्द बन में स्थित रहे वह अरण्य कहता है।

बिषयान् वार्यते इति भोगवारः।
स्वयं ज्योति विजानाति स प्रकाशकः॥

दूसरा सरस्वती भारती और पुरियों का शृङ्गेरी मठ है। भूरिवार सम्प्रदाय है, भूर्भुवः स्वः गोत्र है, रामेश्वर क्षेत्र है, आदि वाराह देवता, कामाक्षी देवी, पृथ्वी धराचार्य, तुङ्गभद्रा तीर्थ, चैतन्य ब्रह्मचारी, वेद यजुर्वेद, "अहं ब्रह्मास्मि" महावाक्य है। आन्ध्र, द्रविड़, करनाटक केरल आदि देश शृङ्गवेद मठ के आधीन रक्खे सरस्वती का अर्थः—

स्वर ज्ञान रतो नित्य स्वरवादि कवीरवरः।
संसारसागर आसार हस्ताऽसौहि सरस्वती ॥

नित्य स्वर ज्ञान में रत, स्वर वादि, कवीश्वर संसार सागर असार हस्त वही सरस्वती है।

विद्या भारेण सम्पूर्णः।
सर्व भारं परित्यजन् ॥
दुखः भारं न जानयति।
भारती परि कीर्तिते ॥

विद्या भार से सम्पूर्ण सर्व भार को त्यागता हुआ दुःख भार को न जानता है वह भारती कहाता है।

ज्ञान तन्वेन सम्पूर्णः।
पूर्ण तत्श पदेस्थितः ॥
परं ब्रह्म रतोनित्मं।
पुरी नामा स उच्यते ॥

तत्व ज्ञान से सम्पूर्ण पूर्ण तत्व पद में स्थित नित्य परब्रह्म में रत वह पुरी नामा कहाता है।

तीर्थ, तथा आश्रमों का पश्चिम में शारदा मठ कीटवार सम्प्रदाय, द्वारिका क्षेत्र, सिद्धेश्वर देवता, भद्र काली देवी, विश्व रूपक आचार्य, गोमती तीर्थ, अमल ब्रह्मचारी स्वरूपक, वेद सामवेद, "तत्वमसि" महावाक्य अविगत गोत्र है। पश्चिम दिशा में स्थित सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र आदि देश शारदा मठ के आधीन रक्खे गये हैं :

त्रिवेणी संयमे तीर्थे। तत्व मस्यादि लक्षणः॥
स्नायात् तत् तत्वार्थं भावेन। तीर्थ नामा स उच्यटे॥

तत्वमस्यादि लक्षण त्रिवेणी संयम तीर्थ में तत्वार्थ भाव थे स्नान करे वह तीर्थ नामा कहाता है।

आश्रम ग्रहणे प्रौढ़। आशा पाश विवर्जितः॥
यातायात विनिर्मुक्त। एषाश्रम उच्यते॥

आश्रम ग्रहण में प्रौढ़ आशा पाश विवर्जित, आवागमन से विनिमुक्त यह आश्रम कहाता है।

चौथा उत्तर दिशा में ज्योति अर्थात् जोषी मठ है श्रे मठ, गिरी, पर्वत और सागरों का "उदीरितम्" कहा है इनकी आनन्दवार सम्प्रदाय, बद्रीश आश्रम क्षेत्र, नारायण देवता पूर्ण गिरी देवी, स्तोटक आचार्य, अलक नन्दा तीर्थ, आनन्द ब्रह्मचारी, 'अयमात्मा ब्रह्म' यह महा वाक्य वेद अथर्व वेद और भृगुगोत्र है। उत्तर दिशा में

स्थित कुरु का मीर, काम्बोज, पांचाल आदि देश शारदा मठ के आधीन रक्खे गये।

वासो गिरि वने नित्यं। गीता ध्यान तत्परः॥
गम्भीराचल बुद्धिश्च। गिरि नामास उच्यते॥

नित्य गिरि तथा बन में वास, गीता के पढ़ने में तत्पर गम्भीर और अचल बुद्धि हो वह गिरि नामा कहाता है।

वसन पर्वत मूलेषु। प्रौढ ज्ञानं विभर्ति यः॥
सारासारं विजानाति। पर्वतः परि कीर्त्तिते॥

जो पर्वत के मूलों में बसता हुवा महान् ज्ञान को धारण करता है और सारासार को जानता है वह पर्वत कहाता है।

तत्व सागर गम्भीरो। ज्ञान रत्न परिग्रहः।
मर्यादां नैव लंघेत। सागरः परिकीर्त्तिते॥

गम्भीर तत्व सागर से ज्ञान रत्न को ग्रहण करने वाला मर्यादा को न लांघे वह सागर कहाता है। इन दश नाम सन्यासियों ने और दश नाम ब्रह्माणों ने जिनको हम अगले अंकों में लिखेंगे सच्चे अर्थों में भारत को अपनाया था। और उद्धार किया था। इसी भाव को यह भजन प्रकट करता है :—

भारत वतन हमारा, भारत वतन हमारा॥
बहती जहाँ पै गंगा, यमुना की स्वच्छ धारा॥
ऋषियों ने जिनके तट पर, ईश्वर को था विचारा॥ १॥

पैदा हुए जहां पर, शंकर से ब्रह्मचारी ॥
विद्या के बल से जिनको, माने है सृष्टि सारी ॥ २ ॥
सिया राम की हो भक्ति, तुलसो का दैवी गाना।
हुए मशहूर भी यहां पर, जिन कृष्ण यश बखाना ॥ ३ ॥
भारत की गोद खोले, बड़े शूर वीर भाई ।
रण भूमि में जिन्होंने, थी वीरता दिखाई ॥ ४ ॥

—: × :—

* अवतारोपदेश *

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते, भूगोल मुद्विभ्रते ।
दैत्यं दास्यते बलिं छलयते, क्षत्र क्षयं कुर्वते ॥
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते: । कारुण्य मातन्यते ॥
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृति कृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

दश महामायाओं ने दश अवतार धारण किये। जब प्रकृति की धूमावस्था अर्थात् वाष्प अवस्था थी तब धूमावती ने मीनावतार धारण किया। जलावस्था में बगला ने कूर्मावतार लिया। जब कुछ पृथिवी और जल मिलती हुई अवस्था में था तब भैरवी ने बराह रूप धारण किया। छिन्न मस्ता ने नृसिंह, भुवनेश्वरी ने वामनावतार, सुन्दरी ने परशुराम, तारा ने राम, काली ने कृष्ण, कमला ने बुद्ध अवतार धारण किया और मातंगी कल्की अवतार धारण करेगी।

कालीतारा छिन्न मस्ता, भैरवी भुवनेश्वरी ।
मातगी बगला कमला, धूमावती च सुन्दरी ॥

डाक्टरों ने भी अनुभव किया है कि मनुष्य गर्भ की आकृति प्रथम मछली जैसी होती है। पुनः क्रमशः कूर्म बराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और अन्त में यह पुरुष बल्कि अवतार धारण करेगा। तब मुक्त हो जायगा।

चैत्र शुक्ल तृतीयाम् अपराह्ने भगवान् नारायणः मत्सरूपेण अवातरत्। ततः सुरद्वेषिणं शङ्खासुरं हत्वा सरित्पतेः वेदान उद्धृतवान् ॥ १ ॥

चैत्र शुक्ल तृतीया के दिन अपराह्ण काल में भगवान् विष्णु ने मछली के रूप में अवतार लिया पीछे देवों के शत्रु शंखासुर को मार समुद्र से वेदों का उद्धार किया ॥ १ ॥

वैशाख पूर्णिमायां सायं कूर्मावतारो बभूव
स च देव दैत्यानां सागर मंथने प्रवृत्ते अधः अधः
गच्छन्तं मन्दराचलं मन्थानं स्वपृष्ठे दधार ॥ २ ॥

वैशाख पूर्णिमा के दिन सायं काल में कूर्मावतार हुवा। उसने (कछुवा) देवदैत्यों का समुद्र मन्थन प्रवृत्त होने पर नीचे २ जाते हुए मन्दरा चाल रूपो रई को अपने पृष्ट पर धारण किया ॥ २ ॥

भाद्रपदस्य शुक्ल तृतीयां अपराह्ने वराह रूपोऽभूत्।
तेन हिरण्याक्ष नामानं दैत्यं मारयित्वा जले निमग्नायाः,
मेदिन्याः स्वदंष्ट्रया उद्धारोऽकारि ॥ ३ ॥

भाद्र पद की शुक्ल तृतीया के दिन अपराह्ण काल में शूकर रूपी हुवा। उस (शुकर) ने हिरण्याक्ष नाम दैत्य को मार, जल में डूबी हुई पृथ्वी का अपने डाढ़ से उद्धार किया॥

वैशाख शुक्ल चतुर्दश्यां सायं नृसिंह स्तम्भात् प्रादुरभुत्।
स तु तत्काल एव स्व नखैः हिरण्यकश्यपुं विदार्य,
आत्मभक्तस्य प्रह्लादस्य रक्षणमकार्षीत् ॥ ४ ॥

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी के दिन सन्ध्या काल में नरसिंह खम्भ से प्रकट हुए वह तो तत्काल ही अपने नखों से हिरण्यकशिपु को फाड़ कर अपने भक्त प्रह्लाद का रक्षण किया॥ ४॥

भाद्रपद शुक्ल द्वादस्यां मध्यान्हे कश्यपात्,
आदित्यायां वामनः प्रकटी बभूव।

स च इन्द्र रक्षार्थं बलि सन्निधिं गत्वा त्रिपदां भूमिं अयाचत।
पश्चात् द्वाभ्यां पादाभ्यां सर्वान्लोका न्व्याप्य तृतीयं,
पदं बलेः शिरसि निधाय तं सुतले प्रेषयामास ॥ ५ ॥

भाद्र पद शुक्ल द्वादशी के दिन मध्यान्ह समय कश्यप (ऋषि) से अदिति में वामन प्रकट हुवा। उन्ने इन्द्र के रक्षण के वास्ते बली के पास जा तीन पांव भूमि को मांगा। पीछे दो पैरों से सब लोकों को व्याप कर तीसरे पैर को बली के सिर पर रख के उसको सुतल लोक में भेज दिया॥ ५॥

वैशाख शुक्ल तृतीयायां मध्यान्हे जमदग्निपुत्रः,
परशुरामः रेणुकायां उदपद्यत।

स तु पितृ हिंसा कारिणं हैह्याधिपम् अहन्।
तेन च क्रोधवशात् एक विंशति वारं धरणिः निःक्षत्रिया कृता ॥६॥

बैशाख शुक्ल तृतीया के दिन मध्यान्ह समय जमदग्नि ऋषि का पुत्र परशराम रेणुका में उत्पन्न हुवा। उसने पिता की हिंसा करने वाले सहस्त्रार्जुन को मारा और उसने क्रोध के आधीन होने से इक्कीस बार पृथ्वी क्षत्रीय रहित की ॥ ६ ॥

चैत्र शुक्ल नवम्यां मध्यान्हे दशरथात्.
कौशल्यायां श्रीरामचन्द्रः आविर्बभूव।
तस्य भरतः लक्ष्मणः शत्रुघ्नः इति त्रयोनुजाः बभूवुः,
स च पितु राज्ञया सीता लक्ष्मणाभ्यां साकं वनमयात्।
तत्र रावणः सीता जहारः ।
अथ रामचन्द्रस्य सुग्रीवः मित्रं अभत।
ततः बालिनं निहत्य वानरराज्ये सुग्रीवं अभ्यषिंचत्।
तदनन्तरं हनुमता सीता शुद्धि कारयित्वा बानर सेन्ययेन,
सार्धं लंका गत्वा रावण कुम्भ कर्णौ अवधीत्,
लक्ष्मणस्त्विन्द्र जितं मारयामास ।
समनन्तरं सीतया सह अयोध्या मागत्या दश,
सहस्त्राणि वर्षाणि धर्मेण प्रजा पालनं कृतवान् ॥ ७ ॥

चैत्र शुक्ल नौमी के दिन मध्यान्ह समय दशरथ से कौशल्या में श्री रामचन्द्र प्रकट हुए उस राम के भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, ऐसे तीन छोटे भाई उत्पन्न हुए वह (राम) पिता की आज्ञा से सीता और लक्ष्मण सहित अरण्य को गया। तहां रावण ने सीता

जी का हरण किया। अनन्तर सुग्रीव रामचन्द्र जी का मित्र हुवा। पीछे बलि को मार बानरों के राज्य में सुग्रीव को अभिषेक किया। इसके पीछे हनुमान से सीता खोज कराकर बानर सेना के साथ लंका को जा रावण और कुम्भकर्ण का वध किया। और लक्ष्मण ने इन्द्रजोत का वध किया। अनन्तर सीता जी के साथ अयोध्या को आकर दस हजार वर्ष तक धर्म से प्रजा पालन किया॥ ७

श्रावण कृष्णाष्टम्यां निशीथे वसुदेवा द्देवक्यां श्री कृष्णः प्रादुर्भूतः।
श्रावणकृष्ण पक्षमेव भाद्रपदकृष्णपक्षइत्युत्तरदेशस्थाः वदन्ति।
तेन च कंस हत्वा काराग्रहात् देवकी वासुदेवौ मोचितौ।
एवं बहून् दुष्टान् हत्वा साधु पालनम् व्यरचि॥ ८॥

श्रावण कृष्ण अष्टमी के दिन आधी रात में वसुदेव से देवकी में श्रीकृष्ण प्रकट हुआ। श्रावण कृष्ण पक्ष को ही भाद्र पद कृष्ण पक्ष ऐसा उत्तर देश में रहने वाले कहते हैं उस कृष्ण ने कंस को मार कर बन्दी खाने से देवकी और बसुदेव मुक्त किये। इस प्रकार बहुत दुष्टों को मार कर साधुवों का पालन किया॥ ८॥

आश्विन शुक्ल दशम्यां सायं बुद्धावतारो भूत।
सच असुरान् अधर्म उपदिश्य नरके पातयामास॥ ९॥

आश्विन शुक्ल दशमी के दिन सायंकाल में बुद्धावतार हुवा। उसने असुरों को अधर्म का उपदेश कर नरक में पटका।

कलि युगान्ते आश्विन शुक्ल षष्ठयां साय कल्किः,
भविष्यति स च अधार्मिकान् हत्वा कृत युगं स्थापयिष्यति॥१०॥

कलियुग के अन्त में आश्विन शुक्ल षष्ठी के दिन सायंकाल में कल्कि होगा वह अधर्म करने वालों को मार कृत युग की स्थापना करेगा ॥ १० ।

मन्दिर के गुम्बज में अशर्फियां

किसी धनवान पुरुष ने अपने मन में विचार किया कि मेरे पास धन बहुत है इस वास्ते यदि इस समय इसमें से कुछ धन गुप्त करके रख दूं तो समय पड़ने पर मुझे अथवा मेरे बालकों के काम आवेगा यह निश्चय करके उसने अपने बनवाये हुए सिद्धेश्वर महादेव के गुम्बजदार शिवालय के गुम्बज में गुप्त रीति से धन रक्खा। उस धन को रखते उसे किसी ने भी नहीं देखा फिर उसने अलग अपनी बही में इस प्रकार लिख दिया 'सम्वत् १६२५ वीं की साल में उत्तरायण सूर्य, चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन चार घड़ी दिन चढ़ते सिद्धेश्वर महादेव के मन्दिर के गुम्बज में पन्दरह लाख अशर्फी रक्खी हैं जब काम पड़े तब निकाल लेना"। इस प्रकार से लिखकर बन्दोबस्त से बही को रखकर साहूकार निश्चिन्त हुआ। कुछ दिनों के बाद वह धनवान तीर्थाटन करने को गया और दैव योग से तीर्थों में ही उसका अन्त हो गया। इससे वह अपने रक्खे हुए धनादि को अपने सन्तानों को बता नहीं सका। पश्चात् उसकी अन्त्येष्टि क्रिया आदिक करके उसके साथ के आदमी

लड़कों बच्चों सहित घर लौट आए। समय पाकर उसके लड़के बड़े होकर अपने पैत्रिक काम में लगे। व्यापार में बारम्बार टोटा आने से उन्हें धन की आवश्यकता हुई। फिर उन्होंने ऋण लेकर व्यवहार चलाया। दैव संयोग से फिर व्यापार में हानि हुई और ऋण का रुपया भी डूब गया। जब लेनदार लोग तकाजा करने लगे तब विचारने लगे कि हमारे बाप दादा बहुत धनवान थे पुराने बही खातों को देखें यदि उसमें कुछ पता लगे और कुछ लेना लोगों पर निकाले तो काम चले। उसे वसूल करने का उपाय किया जाय। ऐसा विचार करके बही खाता देखने लगे। देखते २ जिस बही में गुम्बज वाली पन्दरह लाख अशर्फी की बात लिखी थी वही बही निकली देखते ही बहुत प्रसन्न होकर उन्होंने उसी समय मजदूरों को बुलाकर शिवालय का गुम्बज तुड़वाया। गुम्बज तो टूट गया किन्तु उसमें अशर्फियों का कुछ पता न लगा। तब वे विचार ने लगे को, क्या बही में यह लिखी हुई अशर्फियों की बात झूठी है ? अथवा बात ही हमारे समझ में नहीं आई ? फिर अपने मित्रों से बंचवा कर उन्होंने उस पर विचार किया। तब मित्रों की सलाह से दूसरे बही खातों को देखना आरम्भ किया। जिसमें भिन्न भिन्न २ आसामियों के पास से उसी वर्ष में पन्दरह लाख अशर्फियां वसूली मिली और खर्च की जगह में ऐसा लिखा मिला कि, पन्दरह लाख अशर्फियों की तफसील अमुक बही में गुम्बज के नामे लिखी है। ऐसा तफसील सहित पूरा व्यवहार लिखा देखकर सब आश्चर्य में आय और कहने लगे कि हिसाब किताब सब ठीक हैं लिखा भी

साफ है फिर क्या कारण है कि, बात झूंठ पड़ती है बही में तो बात झूंठी लिखी जा सकती नहीं। इससे जाना जाता हैं कि, या तो गुम्बज में से धन किसी ने चुरा लिया होगा अथवा रखते समय ही कुछ गड़ बड़ हुई होगी इस प्रकार से संदिग्ध बातों को सुनकर बेचारा साहूकार के लड़के बडी चिन्ता में रहने लगे। जिस तिस को बही दिखा कर हमेशा पूछा करते किन्तु बहुत दिनों तक पता नहीं लगा। अन्त में कुल के सब से वृद्ध एक बुद्धिमान पुरुष के पास जाकर उन्होंने अपना सब वृत्तान्त कहा और बही दिखाई। फिर कहा कि धन नहीं मिला उसकी उतनी चिन्ता नहीं है किन्तु मन्दिर के शिखर उतरवाने की बड़ी चिन्ता है। अब हम सब के सामने मुंह दिखाने योग्य नहीं रहे। सब ही कहते हैं कि, यह छोकरे ऐसे कपूत निकले कि, बाप ने तो देवस्थान बनाया और उन्होंने ढ़वा दिया। इस प्रकार निन्दा सुन सुनकर बहुत दुःख होता है। मरना भला किन्तु ऐसे निन्दित जीवन से संसार में रहना अच्छा नहीं सो यदि आप कुछ उपाय बताओ जिससे हम दुःख से छूटें तो ठीक है नहीं तो, हमको मृत्यु के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं सूझता है। हमारे पास इतना पैसा भी नहीं है जिससे मन्दिर का गुम्बज ठीक करवादें तिस पर लेनदारों के तकाजों से और भी जी दुःखी है। साहूकार के लड़कों की बात को सुनकर उस वृद्ध बुद्धिमान् पुरुष ने उन्हें सन्तोष दिलाया। और बही खाता भली प्रकार देखकर उनसे कहा कि भाई! तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। बही में जो कुछ लिखा है सब अक्षर २ सत्य है। किन्तु तुम पहले

एक काम करो कि, मैं तुम्हें रुपया देता हूँ इसे प्रथम मन्दिर का शिखर जैसा था वैसा ही बनवा दो। देखना प्रथम जैसा गुम्बज बना हुआ था वैसा ही बनवाना, उसमें कुछ फेर फार न होने पावे, फिर जब चैत्र सुदी अष्टमी आवे तो उस दिन सवेरे ही मेरे पास आना वृद्ध की बातों को सुनकर और रुपया लेकर वे अपने घर आए और मन्दिर का शिखर जैसा पहले था वैसे बनवा कर चैत्र सुदी अष्टमी का मार्ग देखने लगे जब चैत्र सुदी अष्टमी का दिन आया तब उस दिन उपरोक्त वृद्धपुरुष को अपने घर बुला कर लाये और उसी की आज्ञानुसार उस दिन खूब उत्साह मनाया उत्साह और आनन्द में जब ४ घड़ी दिन चढ गया तब उस वृद्ध पुरुष ने कहा चलो सिद्धेश्वर महादेव का दर्शन करने चलें। फिर सब मन्दिर में दर्शन करने गये दर्शन करके प्रदक्षिणा फिरते फिरते गुम्बज की छाया दिखा कर उस वृद्ध पुरुष ने कहा कि भाई मन्दिर का शिखर यह है यहां ही तुम्हारी पन्दरह लाख अशर्फी गड़ी है। यहां ही खोदने से वह मिलेगी फिर तो साहूकार के लड़कों ने मजदूर बुला कर उसी जगह को खुदवाई और वहां से ही अशर्फी निकली फिर तो अशर्फियों को पाकर साहूकार की सन्तान फिर से धनवान होकर सुखी हो गई है शिष्य ! देख बही में जो कुछ लिखा था सो झूठा नहीं था, अक्षर भी स्पष्ट था सब ही बांच सकते थे। उसका अर्थ सब ही लोग समझ सकते थे। गुम्बज में ही अशर्फियां भी थी। किन्तु किसी दूसरे से अशर्फियों का पता नहीं लगा क्योंकि बांचने को तो सब ही बांचते थे किन्तु चैत्र मास की अष्टमी के दिन

चार घड़ी दिन चढ़े मन्दिर के शिखर में अशर्फी रक्खी है इस वाक्य का अभिप्राय किसी की समझ में नहीं आता था उस वृद्ध पुरुष ने विचार किया कि पन्दरह लाख अशर्फियां मन्दिर के ऊपरि गुम्बज में तो रक्खी जा सकती नहीं हैं क्योंकि ऐसे छोटे शिखर में पन्दरह लाख अशर्फी का अटकना असम्भव है इसलिए भूमि मे शिखर की छाया में अवश्य रक्खी होंगी क्य कि जैसा बही में लिखा है उसी समय मन्दिर के शिखर की छाया जिस स्थान पर जावे उसी को मन्दिर का शिखर समझना चाहिये यदि लिखे हुए समय के विरुद्ध किसी दूसरे महीने अथवा घड़ी तिथि में छाया के शिखर में भी देखा जायगा तो कदापि नहीं मिलेगा इस प्रकार से उस लेख के अभिप्राय को जानने वाला बुद्धिमान वृद्ध पुरुष मिला तब ही यथार्थ अभिप्राय समझ में आया और धन मिला।

* विज्ञान *

मेरे मन की बनावट मेरे मन के अनुभवों को पृथक २ रहने नहीं देती। मुझ में स्वभाविक इच्छा है कि इन अनुभवों को सम्मिलित करूं, इनके सम्बन्धों को जानूं, इन मणकों को एक सूत्र में परो कर एक माला तैयार करूं। यह इच्छा स्वाभाविक है और कोई मनुष्य इससे शून्य नहीं हां और शक्तियों की भांति इसके सम्बन्ध में भी मनुष्यों में भेद है। हमारा समग्र जीवन अपने अनुभवों को

संगठित करने में व्यय होता है। इस क्रम से पूर्व जगत् एक गड़बड़ की अवस्था में होता है हम इस अवस्था की जगह व्यवस्था उत्पन्न करते हैं। जब हम कई अनुभवों को एक सूत्र में परो कर इन्हें व्यवस्था में करते हैं तो हमारा ज्ञान वैज्ञानिक ज्ञान कहलाता है। जैसा कि मैं देखता हूँ कि आप वृक्ष से पृथिवी पर गिरते हैं, देखता हूँ कि पृथिवी सूर्य के गिर्द घूमती है, मैं देखता हूँ कि समुद्र में कहीं जल ऊपर को उठते हैं और कहीं साधारण तल से नीचे चले जाते हैं प्रकाश की किरणें सीधा लकीर में क्रिया करती हैं जब तक मेरे अनुभव परस्पर असम्बन्ध हैं मेरा ज्ञान वैज्ञानिक ज्ञान नहीं परन्तु जब मैं जान लेता हूँ कि यह अवस्थायें एक ही नियम गुरुत्व आकर्षण के रूप है तो मेरा ज्ञान साइन्टिफिक ज्ञान है। अब मेरे अनुभव पृथक और स्वतन्त्र नहीं किन्तु एक दूसरे के साथ बान्धे गये हैं। इसी प्रकार जब मैं शब्द सुनता हूँ और साथ ही जानता हूँ कि मेरे सुनने से पूर्व वायु मण्डल में एक विशेष क्रिया हुई है तो मेरा ज्ञान विज्ञान है। विज्ञान का काम अनुभवों को गठित करना अर्थात् उनके मध्य में भिन्न २ प्रकार के सम्बन्धों का स्थापन करना है यह काम बहुत बड़ा है इसलिए इसे भली प्रकार करने के लिए मनुष्य का मन श्रमविभाग के नियम पर अनुष्ठान करता है। वृक्ष अपनी जड़ों के द्वारा जलीय वा पार्थिव लाभदायक परमाणुवों को खींचकर अपने शाखा पत्रों के द्वारा वायु में फैलाते हैं और जल को खींच कर वाष्प बनाकर सूर्य को देते हैं तब वर्षा होती है। बादलों को स्तम्भित करते है वर्षने के लिए विवश करते हैं तब

जल साधारण तल से नीचे चले जाते हैं जब पीपल के वृक्षादि अपनी जड़ों के द्वारा खींच कर सहस्रों मन जल सूर्य को देते है। जब पीपल पर न्यूबन किशलय फूटते हैं तब उसके नीचे पानी की बून्दें भी टपकने लग जाती हैं। यह फास्फोरस जो दिमाग में सोचने का काम देती है बहुत पैदा करता है। इसलिए बुद्ध मत ने इसको ज्ञान का वृक्ष कहा है। गीता में कहा है कि:—

'अश्वस्थः सर्व वृक्षाणाम्'

अश्वत्थ मेरा रूप है। और भी अहा है !

दृष्ट्वा मुच्यते रोगै स्पृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते।
यदाश्रया चिरंजीवी तं अश्वत्थं नमाम्यहम्॥

देखकर रोगों से छूटता है और स्पर्श कर पापों से तथा नीचे अनुष्ठान करने से चिरंजीवी होता है उस अश्वत्थ को प्रणाम करता हूँ। मरण से पहले पीपल का फल खाने से प्राणी बैकुण्ट को जाता है। मुमुर्षु का अध्यास कफवात पित्त के साथ होता है जिस पदार्थ के सेवन से कफ अधिक बढ़े तब अधोगति होती है क्योंकि जल को निम्न गति है और अग्नि की ऊर्ध्व गति है। हिन्दू विज्ञान के अनुसार मरते समय जो बस्तुयें कफ को फाड़ कर अग्नि को दीपन करें जैसे तुलसीदल गंगा जल पीपल का फल इत्यादि देने से मुमुर्षु को बैकुण्ट की प्राप्ति होती है। दाभ पर सुलाने से उर्ध्व गति कारी विद्युत् की सहायता मिलती है प्राणों का संगठन होता है दाभ के विषय में वेद में कहा है:—

नास्य केशान् प्रवपन्ति, नोरसि ताड़ माघ्नते ।
यस्माच्छिन्न पत्रेण, दर्भेण शर्म यच्छति ॥

अथर्व

अछिन्न पत्र कुश से जिस शिर पर जल छिड़का जाता है उसके बाल नहीं पकते और न दिल धड़कता है।

जिस घर पर काली तुलसी लगी हुई होती है उस पर बिजली नहीं गिरती इसी प्रकार जिस मन्दिर पर त्रिशूल गड़ा हुवा हो मोर के पंख के झाड़े से वायु वा अग्नि सम्बन्धि बीमारी दूर होती है। मृगछाला पर प्रणायाम करने से बवासीर नहीं होती है। गौ के गोबर के लेपन से जर्मज नहीं पैदा होते। गौ मूत्र के सेवन से राज यक्ष्मा दूर होता है। गौ के दर्शन से पाप नष्ट होते हैं शंख की कावाज से हैजे और प्लेग के कीड़े दौड़ते हैं और कुछ मर जाते हैं।

विज्ञान के द्वारा ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक पदार्थ में विद्युत शक्ति है और वह दक्षिण से उत्तर को स्वभाविक रौ को भाँति बहती है जो दक्षिण की ओर पैर करके सोता है उसकी आयु काघटना अथवा बुरा स्वप्न आना सम्भव है। दोनों समय मिलने पर सोना और भोजन करना निषिद्ध है। मल मूत्र के वेगों के रोकनेसे रोग उत्पन्न होते हैं। हवन के धूवें और विभूति से बीमारी दूर होती हैं। यूं तो पत्थर पर पानी डालकर पीना स्वास्थ्य दायक है ही, परन्तु गाण्डिका नदी के सालिग्राम जिनसे सोना उत्पन्न होता है वा नरमदेश्वर, महादेव पर चढ़ाया हुवा जल सब आधीव्याधियों को विनाश करता है।

—: o X o :—

* निष्काम कर्म *

इस संसार में जितने भी प्राणी हैं उनको कुछ न कुछ कर्म अवश्य करना पड़ता है श्री भगवान् गीता में कहते हैं कि.—

"नहि कश्चित्क्षण मपि जातुतिष्ठत्यकर्म कृत"

कि हे अर्जुन ! इस संसार में कोई भी प्राणी एक क्षण भी विना कर्म के नहीं रहता।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नाना वाप्त मवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥

हे पार्थ यद्यपि मुझे तीनों लोकों में कुछ कर्त्तव्य नहीं तथा कोई अप्राप्त वस्तु प्राप्त भी नहीं करनी तो भी मैं कर्म करता हूँ। जब तक जीव संसार में है। तब तक उसे कर्म अवश्य करने चाहिये परन्तु वह कर्म निष्काम बुद्धि से करने चाहिएं जो मनुष्य कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखता है वही बुद्धिमान् है वही सत्कर्मी है। यज्ञ, दान, तप आदि कर्म त्यागने योग्य नहीं है। आगे चल कर कहते हैं कि:—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

हे अर्जुन ! तेरा कर्म करने में ही अधिकार है। कर्म के फल की इच्छा न कर।

जब हम व्यवहार में भी देखते हैं कि यदि किसी के साथ हम यत्किंचित् भी निष्काम कर्म करते हैं तो दूसरा हम पर प्राण तक न्योछावर करने को उद्यत हो जाता है। फिर भला भगवान् की तो बात ही क्या है।

एक समय किसी साधारण मनुष्य ने एक महात्मा से पूछा कि "महाराज ! मुझे राजा के दर्शन किस प्रकार से हो सकते हैं"। महात्मा ने कहा कि राजा के किले पर बहुत से श्रमजीवि कार्य कर रहे हैं तू भी वहां जाकर काम करने लग जाना जब कोई तुम को नौकरी दे तो कह देना कि मैं राजा का कार्य कर रहा हूँ यदि राजा से भी नौकरी लूंगा तो मेरी राज भक्ति ही क्या है। वह मनुष्य राजा के किले पर जाकर कार्य करने लगा। सायंकाल को जब ठेकेदार सब को वेतन देने लगा तो उसने लेना अस्वीकार किया और कहा कि मैं तो राजा का कार्य निष्काम भाव से ही करूंगा। इस प्रकार से धीरे धीरे बड़े २ पदाधिकारियों के कानों तक यह बात पहुंच गई। किसी ने राजा से भी कहा कि महाराज एक ऐसा पुरुष किले पर काम कर रहा है जो नौकरी ही नहीं लेता वह कहता है कि मैं राजा से नौकरी लेकर कार्य करना पाप समझता हूँ। राजा यह सुन कर उसे देखने को स्वयं किले पर आये। और उस मनुष्य को देखा। तब उस मनुष्य ने विचार किया कि जिस प्रकार से इस देश के अधिपति के प्रति निष्काम कर्म करने से दर्शन तथा अनुग्रह का भाजन हुवा हूँ मुझ जैसे साधारण जीव के लिए कठिन ही नहीं असम्भव था इसी प्रकार यदि मैं जो सारे विश्व का अधिपति है उसके प्रति निष्काम कर्म करूं तो क्या वह कृपालु दया के सागर मुझ को दर्शन नहीं देगें ? ऐसे सोचकर वह मनुष्य भगवान् के प्रति निष्काम कर्म में प्रवृत्त हुआ।

अनाश्रितः कर्म फलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निं चाक्रियः॥

जो कर्म के फल पर आश्रय न रख के केवल कर्त्तव्य जान कर्मों को करता है वही संन्यासी है और वही योगी है जिसने केवल अग्निहोत्रादि कर्मों को त्याग दिया वह संन्यासी नहीं।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गत्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्म पत्र मिवाम्भसा॥

जो आसक्ति त्याग कर और सब कर्मों को ईश्वर में अर्पण करते हुए कर्म करता है वह जिस प्रकार जल से कमल पत्र लिप्त नहीं होता उसी प्रकार पाप से लिप्त नहीं होता है।

— :० × :० —

* मेरा *

कौन देव लग्न में मेरा शब्द संसारमें स्फुरित हुआ था कि जिस को देव, दानव, मानव किसी की बुद्धि स्थिर नहीं कर सकती जैसे अनन्त देव अपने सहस मस्तकों पर सारे संसार के भार को उठाये हुये हैं वैसे ही (मेरा) यह शब्द भी पृथ्वी को समस्त घटनाओं का कारण हो रहा है मेरा इस शब्दमें कैसा मोहक गुण है और कैसा जादू भरा है कि यह किसी की समझ में नहीं आता तुम्हारा बालक कैसा ही सुन्दर हो मेरा चित्त सहसा आनन्दित नहीं होता, परन्तु मेरा पुत्र यदि कदाकार (बदसूरत) भी हो तो बारम्बार देखने पर भी नयनों की प्यास नहीं बुझती। जो कार्य दूसरे के लिए साधा जाय सामान्य होने पर भी अति क्लेश दायक मालूम पड़ता है परन्तु उससे शत गुणा अधिक क्लेश साध्य भी कार्य यदि मेरा हो तो प्राणपन से साधन करने में

भी क्लेश नही होता दूसरे के अधिकार का कोई द्रव्य नष्ट हो जाये तो उसमें दुःख नहीं होता परन्तु वही पदार्थ यदि (मेरा) हो तो उसके यत्न करने की सीमा ही नहीं मिलती। आज दूसरों के जिन २ पदार्थों की निन्दा किया करता हूँ यदि कल वही सब (मेरा) हो जाय तो बिना प्रशंसा किये नहीं रहा जाता। तुम्हारा गुण, तुम्हारी विद्या, तुम्हारा यश सुनने में क्लेश होता है परन्तु (मेरा) हो तो निरन्तर सुनने में कातर नहीं होता तुम्हारी उँगली में सोने की एक अंगूठी भी देखकर सहा नहीं जाता परन्तु मेरा होने से सारे अङ्ग में सोने का बोझ सानन्द सहन कर सकता हूँ दूसरों का थोडी सी पृथ्वी पर अधिकार देखकर जलन होती है परन्तु सारा भूखण्ड 'मेरा' हो जाय तो इसके यत्न की सीमा नहीं रहती।

मेरा' इस शब्द ने जन्म लेते ही पिता माता का ग्रास किया देखते २ भाई बहिन का ग्रास किया अवसर पाकर स्त्री पुत्र कलत्र कुटुम्ब परिवार को भी ग्रास किया फिर घर, द्वार, कार, वार, आदि का भी ग्रास करने में त्रुटि नहीं की क्रम २ से दूसरों का धन सँपत ग्रास करने में अगुआ हुआ, त्रिभुवन का ग्रास करके भी 'मेरा पेट नहीं' भरा' माया राक्षस रूप धारी इस 'मेरा' शब्द ने कीट से लेकर ब्रह्म पर्यन्त सब को मोहित कर रक्खा है। मेरे हृदय में मेरा शब्द अति-प्रिय मालूम पड़ता है, मेरा शब्द में मैं ऐसा मोहित हो रहा हूँ कि कभी विचार भी नहीं करता कि जिन २ वस्तुओं को मेरा समझ रक्खा था उनमें से एक भी मेरी नहीं ठहरी, मेरा शरीर मेरे वश

में नहीं, मेरी इन्द्रिय बगल में नहीं, मेरे चित्त पर मेरा अधिकार नहीं तब भी, मेरा कहते हुए लज्जा नही आती। हाय ? मेरा इस भ्रम ने ही सर्व नाश किया, यथार्थ में क्या मेरा है इसका विचार नहीं किया जिस सम्बन्ध से मेरा कहना है कभी इस गम्भीर भाव को शुद्ध अन्तःकरण में नहीं सोचा कि जिनका सकल ब्राह्माण्ड है जिनका सब कुछ है और जिनका मैं हूं जब उनको 'मेरा' कह सकूं जब उनके सम्बन्ध से सकल पदार्थों को मेरा समझ सकूं तब ही मेरा का गूढ भेद मालूम पड़ेगा और "मेरा" कहना सार्थक होगा।

मेरा मेरा सब कहैं तेरा सब कुछ तोहि ।
तेरा तुझको कहत हि क्या लागत है मोहि ॥
मेरा मुझ में कुछ नाहि, सब कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते क्या कुछ लागे मोर ॥

* कवित्त *

मेरो देह मेरो गेह मेरो परिवार सब.
मेरो धन माल मैं तो बहुविधि भारो हूँ ।
मेरे सब सेवक हुकम कोऊ बेटे नाहीं,
मेरी युवती को मैं अधिक पियारो हूँ ॥
मेरो वंश ऊँचो मेरे बाप दादा ऐसे भए,
करत बड़ड़ाई मैं तो जगत उजारो हूँ।
सुन्दर कहत मेरो मेरो ही जाने शठ,
ऐसे नहिं जाने मैं तो काल ही को चारों हूँ ॥

• सत्य •

नास्ति सत्य धर्मो न सत्यात् विद्यते परम् ।
नहिं तीव्रतरं किञ्चित् अनृतादिह विद्यते ॥

सत्य के समान कोई धर्म नहीं है और न सत्य से पर कुछ है इस लोक में झूठ के बराबर कोई तीव्र तर पाप नहीं है ।

अश्वमेघ सहस्रं च सत्यं तुलया धृतम् ।
अश्वमेघ सहसाद्धि सत्य मेव विशिष्यते ॥

हजारों अश्वमेघ यज्ञ और सत्य को यदि तुला से तोला जावे तो अश्वमेघ सहस्र से सत्य ही अधिक होगा ।

सत्यं मृदु प्रियं वाक्यं धोरो हित करं वदेत् ।
आत्मेत्किर्षं तथा निन्दां परेषां परिवर्जयेत् ॥

धीर पुरुष मोठी प्रिय हित कर सत्य वाणी कहे और अपनी महिमा और विद्या को अपने मुखारविन्द से दूसरों के प्रति न कहें ।

सत्यमेव व्रतं यस्य दया दीनेषु सर्वदा ।
कामक्रोधो वशे यस्य स साधुः कथ्यते बुधैः ॥

जिन जन का सत्य व्यवहार, और प्रति दिन दीनों में दया, काम, क्रोध जिस के वश में हैं उसे विद्वान् साधु कहते हैं ।

ऋषयश्चैव देवाश्च सत्य मेवहि मेनिरे ।
सत्यवादि हि लोकेऽस्मिन् परं गच्छति चाक्षयम् ॥

ऋषि और देवता सत्य को ही सर्व श्रेष्ट मानते थे इस लोक में सत्यवादि ही अक्षय फल को प्राप्त होता है ।

सत्य होन वृथा पूजा सत्यहीनी वृथा जपः ।
सत्यहीनं तपो व्यर्थं ऊषरे वपनं यथा ॥

सत्य होना पूजा निष्फल है और सत्य से होन जप निष्फल है सत्य से होनतप ऊसर भूमि में बीज बोने के समान व्यर्थ है ।

मन्यते पापकं कृत्वा न कश्चिन वेत्ति मां इति ।
विदन्ति चेनं देवात्च यश्चैवान्तर पूरुषः ॥

पाप करके मानता है कि मुझको कोई नहीं जानता है देवता और हृदयस्थ ही उसको जानते हैं ।

गोभिर्विप्रैश्च सतीभिः, सत्य वादिभिः ।
अलुब्धैः दान शूरैश्च सप्तभिर्धार्यन्ते मही ॥

गौ, विप्र, वेद, सती, सत्यवादि, लोभ रहित, और दानवीर इन सातों ने पृथ्वी धारण की हुई है ।

सत्यस्य वचनं साधु न सत्यात् विद्यते परम् ।
सत्येन विधृतं सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥

सत्य ही सत्य वचन है परे कोई उत्तम पदार्थ नहीं है सत्य से ही सब पृथिव्यादि धारण किये हुये हैं सत्य में ही सब लोक लोकान्तर स्थित हैं ।

एकोऽहं मस्मीति च मन्यसे त्वं,
न हृच्छयं वेत्सि मुनि पुराणम् ।

वेवेदिता कमर्ण पावकस्य,
तस्यान्तिके त्वँ वृजिनँ करोषि ॥

मैं ही एक हूँ और कोई नहीं देखता है। तू ऐसा मानता है और हृदय में स्थित उस परमात्मा को न जानता हुआ पाप कर्म को जानता हुआ भी उस सर्व व्यापक परमात्मा के पास पाप कर रहा है।

• धर्म •

'धर्मेणैव जगत् सुरक्षित मिदं धर्मोवरा धारकः'।
सुखार्थाः सर्व भूतानां मताः सर्वा प्रवर्तयः॥
सुखं च न विना धर्मात् तस्मात् धर्म परो भवेत्।

सुख ही सब प्राणियों को सब कार्यों में प्रवृत्त कराने वाला है और धर्म के बिना सुख नहीं होता है इस वास्ते धर्म ही सर्व श्रेष्ठ है।

धर्म सर्व सुखं करो हित करो, धर्म बुधाः श्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिव सुखं, धर्माय तस्मै नमः॥

धर्म ही सुख और हित के करने वाला है विद्वान् धर्म को ही उपार्जित करते हैं धर्म से ही कल्याण तथा सुख प्राप्त होते हैं इसलिए धर्म के लिए नमस्कार हो।

संक्षेपात् कथ्यते धर्मो जनाः किं विस्तरेण वः।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥

हे मनुष्यो विस्तार से क्या संक्षेप से ही धर्म को कहता हूँ परोपकार पुण्य के लिये, और पाप परिपीड़न के लिए होता है।

न्याय युक्त जो कार्यारम्भ किया जाता है उसे धर्म कहते हैं। अत्याचार ही अधर्म है यह ही शिष्टों की आज्ञा है।

आरम्भो न्याय युक्तो यः सहि धर्म इति स्मृतः।
अनाचारस्त्वधर्मेति ह्येतच्छिष्टानु शासनम्॥

यज्ञ अध्ययन दान तप सत्य क्षमा इन्द्रिय निग्रह लोभ यह अष्ट प्रकार का धर्म मार्ग है।

इज्याध्यनदानानि तपः सत्यं क्षमा दमः।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्ट विधः स्मृतः॥

जो सदैव सब का मित्र और कर्म मन वाणी से सब के हित में तत्पर है उसे ही तू धर्म जान और को नहीं।

सर्वेषां यः सुहृन्नित्य सर्वेषां च हिते रतः।
कर्मणा मनसा वाच स धर्म वेद नेतरः॥

कर्म मन और वाणी से सब भूतों में अद्रोह कृपा, दान, और सत्य भाव होना ही सनातन धर्म है।

अद्रोह सर्व भूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातन॥

शुद्धान्तःकर्ण और प्रेम दृष्टि से अवलोकन करना सुभाशित वचन बोलना और उठकर आसन देना यह सनातन धर्म है।

चक्षुर्दद्यात् मनो दद्यात् वाचं दद्यात् सुभषितम् ।
उत्थाय चासनं दद्यात् एष धर्मः सनातनः ॥

"आरम्भो न्याय" इस श्लोक से "चक्षुर्दद्यात्" तक के अर्थ श्लोकों के ऊपर हैं ।

अहिंसा सत्यमक्रोधो दान मेतत् चतुष्टयम् ।
अजातशत्रो सेवसेस्व धर्म एषः सनातनः ॥

अहिंसा, सत्य, अक्रोध और दान यह चार और अजात शत्रु की सेवा करना यह सनातन धर्म है ।

सत्यँ ब्रूयात् प्रियँ ब्रूयात न ब्रूयात् सत्यम प्रियम् ।
प्रियं च नानृतँ ब्रूयात् एष धर्मः सनातन. ॥

सत्य बोले परन्तु प्रिय बोले असत्य प्रिय कदापि न कहे और झूठो प्रिय वाणो भी न कहे यह सनातन धर्म है ।

गृहस्थः पाव्ठयंदारान् विद्याभ्यासयेत् सुतान् ।
गोपयेत् स्वजनान् बन्धून्नेष धर्मः सनातनः ॥

गृहस्थो स्त्रियों की रक्षा करें पुत्रों को पढ़ाव अपने बन्धु जनों की रक्षा करें यह सनातन धर्म है ।

अकृत्यं नैव कर्तव्यं प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते ।
नत्वकृत्यं परित्याज्यं एष धर्मः सनातनः ॥

प्राण त्याग उपस्थित होने पर भी अकर्म कदापि नहीं करे और नहीं कर्म का परित्याग करे यह सनातन धर्म है ।

दम निःश्रेयसेप्राहु वृद्धा निश्चित दर्सिनः।
ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः॥

तत्त्व दर्शी महान दम को मोक्ष प्रदायक कहते हैं ब्राह्मण का विशेष रूप से दम ही सनातन धर्म है।

यथा पत्याश्रमो धर्म स्त्रिणाँ लोके सनातनः।
अपवर्ग गति नेंत्यो यति धर्मः सनातनः॥

जैसे स्त्रियों का सदा पति के आश्रय रहना सनातन धर्म है तैसे ही स्वर्ग प्राप्ति में सनातन धर्म है।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धधर्मो न हातव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत्॥

मारा हुआ धर्म मनुष्य का हनन करता है रक्षो भूत धर्म ही मनुष्य को रक्षा करता है इसलिये धर्म नहीं छोड़ना चाहिए हत धर्म मनुष्य का हनन करता है।

सत्यादुत्पद्यते धर्म दया दानात् विवर्द्धते।
क्षमया तिष्ठते धर्मः क्रोधाद्धर्मो विनष्यति॥

सत्य से धर्म उत्पन्न होता है दया और दान से बढ़ता है क्षमा से धर्म स्थित रहता है क्रोध से धर्म नष्ट होता है।

अध्यापनं ब्रह्म यज्ञः पितृ यज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिभौंतो नृयज्ञोऽथितिर्पूजनम्॥

अध्ययन कराना ब्रह्म यज्ञ है, तर्पण पितृ यज्ञ है, हवन देव यज्ञ है, बालि भूत यज्ञ, अतिथि पूजन नृयज्ञ है।

पञ्च यज्ञांस्तु यो मोहात् न करोति गृहाश्रमे।
तस्य नायं न च परोलोको भवति धर्मतः॥

गृहस्थाश्रम में जो अज्ञानता से उपरोक्त पांच यज्ञों को नहीं करता धर्म से उसको इस लोक तथा परलोक की प्राप्ति नहीं होती है।

बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृह मागतः।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याभ्यागतां गुरुः॥

घर पर आया हुआ बालक वृद्ध अथवा युवा सब ही अथिति होते हैं उनकी पूजा करनी योग्य है। क्योंकि सब का अभ्यागत ही गुरु होता है।

उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोपि गृह मागतः।
पूजन यो यथा योग्यं सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥

उत्तम वर्ण के घर में नीच भी यदि आ जावे तो उसकी पूजा करनी योग्य है क्योंकि आभ्यागत ही सब का गुरु है।

धर्म प्रसंगादपि ना चरन्ति। पापं प्रयत्नेन समाचरन्ति॥
आश्चर्यं मेतद्धि मनुष्य लोके। अमृतं परियज्य विषंपिवन्ति॥ ८

मनुष्य प्रसंग से भी धर्म का आचरण नहीं करता है। किन्तु यत्न से पाप का आचरण करता है। यह मनुष्य लोक में बड़ा आश्चर्य है जो अमृत को छोड़कर विष का पान करे। ८

एक पुरानी कथा

असहयोग आन्दोलन जोरों पर है देश में महात्मा गान्धी की तूती बोल रही है। मोलाना अहम्मद अली और शोकत अली देवता माने जाते हैं, शहर और कस्बे मोलानाओं को जयकारों से गूंज रहे हैं। दोनों भाई महात्मा जो के दाएं और बाँएं हाथ समझे जाते हैं असहयोग और खिलाफत की देश में धूम धाम मच रही है। भारत के पन्थाई दीवाने हिन्दू और मुसलमानों के मिलाप से अंग्रेजी सरकार चक्कर में है और संसार चकित है। संसार के नीतिज्ञ आश्चर्यान्वित हैं वह आशा की झलक से उत्साहित होकर सोचते है कि क्या ३२ करोड़ मनुष्य अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता फिर प्राप्त कर सकेंगे, समस्त संसार में स्वतन्त्रता के पुजारी महात्मा गांधी को जानने और देखने के बड़े उत्सुक हैं। वह कहते सुनाई देते हैं कि बिना शस्त्र के अंग्रेजी सरकार की अवज्ञा करने वाला यह महान् पुरुष कौन है ? कुत्ते और बिल्ली की भाँति लड़ने वाले हिन्दू और मुसलमानों को भाई २ की तरह दूध, पानी करने वाला वह विलक्षण पुरुष कैसा करामाती है ? बुद्ध और ईसा की भांति अहिंसा व्रत का पालन करने वाला यह दिव्य महापुरुष कौन है ? अंग्रेजी सरकार सोचती है कि जर्मन की लड़ाई कठिन होते हुए भी हमने जीत ली परन्तु यह मरा सांप गले में से किस प्रकार निकाला जावे सेना को पराजय करना कठिन नही परन्तु ३२ किरोड़ निरस्त्र जन समूह की बाढ़ को जो पतंगे की भाँति जलने को तैयार हो किस तरह

शान्त किया जावे। इस बिना मार काट को लड़ाई का हम को अभ्यास नहीं है। हमारी वीरता और राजनीति दिखाने का अवसर नहीं है, इस लंगोट बन्द ने तो हमारी राजनीति और सभ्यता दोनों की परीक्षा कर डाली। इस परीक्षा में पास होना बड़ा दुरस्त है। लण्डन की पार्लिमेण्ट और केबीन्यट दोनों में खूब सोच विचार होता है। इंगलेण्ड में भारत के वायसराय पद को पेश किया जाता है परन्तु ऐसी परिस्थिति में उसको स्वीकार करने का किसी का साहस नहीं होता। इंगलेण्ड के भाग्य में अभी बड़ा बल है एक विलक्षण राजनीतिज्ञ यहूदी लार्ड रीडिङ्ग जिसने अमेरिका की कठिन समस्या को हल किया था अपनी बुद्धि पर भरोसा करके भारत की दशा को सुधारने का बेड़ा उठाकर आता है। भगवान् उसकी सहायता करते हैं और वह अपने कार्य में दत्त चित हो जाता है।

सब से पहला काम जो लार्ड रीडिङ्ग करता है वह प्रिन्स आफ वेल्ज का भारत में बुलाना था। सन् १९२१ का आरम्भ काल है। प्रिन्स आफ वेल्ज भारत में आते हैं महात्मा गान्धी उनके स्वागत में भाग लेने की मनाई कर देते है। प्रिन्स का दिल्ली में आना निश्चय होता है। भारत सरकार को चिन्ता होती है कि प्रिन्स के मन पर यह प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए कि उनका स्वागत अच्छा नहीं हुआ। यद्यपि महात्मा गांधी का बड़ा प्रभाव था परन्तु फिर भी एक जमी हुई सरकार का बड़ा प्रभुत्व होता है। दिल्ली के हिन्दू मुसलमानों में बड़ा जोश था उन्होंने मेल करके पूरा असहयोग किया। हड़ताल करदी परन्तु सरकार ने आस पास के जिलों से कलकटरों

द्वारा ग्रामों से लोगों को बुलाने का प्रबन्ध कर लिया। निकटवर्ती जिलों से सैंकड़ों स्पेशल गाड़ियां छोडी गईं और दिल्ली में लाखों आदमी स्वागत के लिए इकट्ठे हो गए यद्यपि ग्राम में आन्दोलन इतना तीव्र न था जितना कि शहरों और कस्बों में परन्तु फिर भी आन्दोलन बहुत था और विशेष बात यह थी कि सरकार का जनता पर से विश्वास उठ गया था इस लिए सरकार ने बड़ी चतुराई से अछूतों को अपनाने का प्रयत्न किया। दिल्ली में अछूत जातियों की एक सभा करने का आयोजन किया गया। बिना किराए की गाड़ियाँ तो थी ही इसके अतिरिक्त उनको और भी सब प्रकार की सहायता दी गई। फीरोजशाह तुगलक का किला सभा करने और ठहरने का स्थान नियत किया गया। सरकारी अफसरों के अतिरिक्त इस कर्म में मिशन के पादरियों का पूरा हाथ था। अंग्रेजी पादरी और वह लोग जो अछूतों में से ईसाई हो गए थे इसमें सभी सम्मिलित थे। मिशन वालों को जहां उनसे सहानुभूति थी वहां उनका यह भी लक्ष, और प्रयत्न था कि इनमें ईसाईयत का प्रचार किया जावे।

आश्रम का और दिल्ली का विशेष अन्तर नहीं है इसलिए आश्रम में भी यह सामाचार मिला कि दिल्ली में पचास हजार से अधिक अछूत इकट्ठे हुए हैं और पादरी लोग इनमें ईसाई धर्म का प्रचार करेंगे। आश्रम में अछूतों की पाठशाला और अछूतों से बड़ा प्रेम है। श्री १०८ महाराज जी ने हम लोगों को बुलाकर फरमाया कि हिन्दू मुसलमान प्रिन्स के स्वागत में भाग न लेने के कारण

अछूतों से नाराज हैं वह उनमें प्रचार करने नहीं जावेंगे और ईसाइयों को वहाँ प्रचार करने का अवसर है इसलिए वहां जाकर उनमें प्रचार करना चाहिए क्योंकि ऐसा न किया जावेगा तो सम्भव है हजारों हिन्दू एक दम ईसाई हो जावें। अछूतों से भी प्रेम था और श्री महाराज जी की आज्ञा भी शिरोधार्य करनी चाहिए परन्तु फिर भी हम विकट समस्या में पड़ गए। कारण मन का वेग बड़ा प्रबल है उस समय की परिस्थिति को अनुभव करके भाँति २ के विचार उत्पन्न होने लगे। मानसिक वृत्तियां नाचने लगीं मान अपमान का भूत भयभीत करने लगा सोचने लगे कि जो आश्रम त्याग, वैराग के विचार से अपने ढंग का एक ही है जिसकी सादगी भारत के सब आश्रमों से बढ़ी हुई है। जिनसे लोगों को यह आशा है कि यह धर्म का काम करेंगे वही आदमी आज न मालूम किस लालच वश समस्त देश के विचारों के विरुद्ध प्रिन्स के स्वागत में शामिल होने के लिए जा रहे हैं। इससे भी बढ़कर बात यह हुई कि श्री महाराज जी ने फरमाया कि जो सरकारी गाड़ी रेवाड़ी से जावेगी उसी में जाना चाहिए। पहले तो हम मन को मार कर रह गए परन्तु फिर न रहा गया और हम बोल ही उठे "क्या महाराज जी इसी गाड़ी में जाना चाहिए" श्री महाराज जी ने सरलता से फरमाया "हाँ इसमें आश्रम का किराया भी खर्च न होगा, बात स्पष्ट हो चुकी थी हम मन को मसोस कर रह गये और चलने का संकल्प करके तैयारी करने लगे। वानप्रस्थी, संन्यासी और अध्यापक लड़कों को लेकर स्टेशन पर पहुँचे। बहुत

असहयोगी सज्जन मिले जो गाड़ी में जाने वाले लोगों से न जाने की प्रार्थना कर रहे थे। हम लोगों को देखकर वह चकित रह गए और प्रश्न करने लगे कि आप लोग कहां जा रहे है? यद्यपि अज्ञान के कारण हमको अपने कार्य के परिणाम का कुछ भी पता न था तो भी श्रद्धा के कारण हमारा निश्चय दृढ़ था और हम को किसी प्रकार का संकोच, लज्जा व शंका न थी। हमने प्रेम से उत्तर दिया कि अछूतों में प्रचार करने जा रहे हैं। उन्होंने हमारी बात का विश्वास नहीं किया हम भी हंस कर चुप हो रहे। उनके मन हमारे जाने से खिन्न तो बहुत हुए परन्तु क्या करते हम भी अपने विश्वास में मगन थे। हाँ एक व्यक्ति वहां ऐसे भी थे जो हमको देखकर प्रसन्न हुए और वह थे रेवाड़ी के तहसीलदार।

गाड़ा में हसते, भजन गाते दिल्ली पहुँचे। शहर में और ही नकशा था। सब दुकाने बन्द थीं। हम सेठ नाथूराम, मथुराप्रसाद की कोठी पर गए। यह आश्रम के खजांची हैं परन्तु यह भी असहयोगियों में थे। दरवाजे पर जमादार से भेंट हुई वह एक सरलात्मा ब्राह्मण था परन्तु हमारे इस कृत्य को वह भी सहन नहीं कर सका। हम, हंसो, प्रेम, और वार्तालाप से उसको शान्त करके और सामान रखकर मित्रों (अछूतों) की तलाश में चल दिए। चान्दनी चौक में यह पूछने पर कि प्रिंस का स्वागत कहां होगा, लोग बिगड़ जाते थे और कई सज्जन तो नाराज होकर यह कहते कि क्या तुम चमार हो जो वहां जा रहे हो"? उनकी बातों से हम को यह तो अनुभव हो गया कि यह लोग अछूतों से चिड़कर

उन से उदासीन हो गये हैं। बात यहां तक बिगड़ी हुई थी कि हमको सैकड़ों आदमी मिले और कई घण्टे हमने खर्च किये परन्तु किसी भले आदमी से हमको उनके उत्सव के स्थान का भी परिचय नहीं मिला, अन्त में एक अछूत भाई ने ही हमको स्थान बतलाया। हम पुराने किले पर पहुँचे। दरवाजे पर एक स्वयं सेवक बैठा था। उसने हमारा पता पूछा और यह जानकर कि हम हिन्दू हैं हमको अन्दर जाने से रोक दिया। वह दृश्य भी सदैव याद रहेगा। हम उससे प्रेम से बात चीत करते थे और वह हमको बड़ी घृणा और लापरवाही से उत्तर देता था। उसके इस बर्ताव से हमारी उत्कंठा और भी बढ़ गई और हम उसकी खुशामद करने लगे। अन्त में वह प्रसन्न हो गया और यह कह कर हमको आज्ञा प्रदान की, कि हिन्दू मुसलमानों को तो जाने की आज्ञा नहीं है परन्तु साधुओं की मनाई नहीं हैं इसलिये आप जा सकते हैं। हमने भीतर प्रवेश किया परन्तु वहां जाकर हमारी कठिनाई और भी बढ़ गई। सभापति तो वहां था नहीं और मन्त्री, उप मन्त्री इत्यादि किसी ने भी हमसे बातचीत नहीं की। वहां बिल्कुल विपरीत वायु मन्डल था। कोई आदमी विश्वास नहीं करता था। उनको यह उपदेश दिया गया था कि हिन्दू मुसलमान तुम्हारी भलाई नहीं चाहते इसलिये उनसे बात करने में लाभ नहीं है वह तुम को उल्टा उपदेश करेंगे इससे उनकी वार्तालाप सुननी ही नहीं चाहिये। यह उपदेश करने वाले बहुधा उनके भाई ही थे और हम लोगों ने यह बात सत्य भी कर दिखलाई कारण हमारा व्यवहार उनके प्रति क्रोध व घृणा का था। बहुत प्रयत्न करने पर शाम को

एक साधु ने प्रेम से हमारी बातचीत सुनी और हम को बतलाया कि इस समूह में केवल एक सभापति ही ऐसा है जो समझदार और सभ्य है इसलिये आप कल आकर उससे मिलें तो आप को सफलता होगी। हमने इतने पर सन्तोष करके भविष्य की आशा बान्धी और वहां से चल दिये।

हमको उसी काम की धुन थी इस लिए शीघ्र ही पहुँच गए। वहां कोई पचास हजार आदमियों का समूह था। पिण्डाल बड़ा विशाल बना था। ऊँचा प्लेट फार्म बना कर कुर्सियों बिछाई गई थी। लोगों के मन में बड़ा उत्साह और आनन्द था। उस समय वह लोग यह अनुभव करते थे कि शीघ्र ही हमारी उन्नति हो जावेगी। लोगों में यह चर्चा थी कि दिल्ली का चीफ कमिश्नर शाहजादे को लेकर आवेगा। एक ही धर्म और एक ही कानून के आधीन अपने ही देशी भाई जिनको पास बिठाने में घृणा करें और जिनके छूने से पतित हो जावे उन लोगों में उस साम्राज्य का भावी सम्राट जिसको उच्च कुलाभियानी ब्राह्मण और क्षत्री भेंट चढ़ाते हों आवेगा, इस आशा से उनके हृदय में जो आनन्द था उसका अनुमान हम नहीं कर सकते। उनके दिमाग में एक ही बात थी और उसके जप का यही मंत्र था कि शाहजादा कब आवेगा?" उनके इस उत्साह और आनन्द में मानसिक भावों से सम्मिलित हो कर हम मन ही मन में भगवान् की लीला को निहारते थे कि भगवान् तेरी माया अपरम्पार है, तेरी इस लीला के चक्र को कौन जान सकता है? जिनके साथ पशुओं से भी बुरा बर्ताव होता था उनकी सभा में

शाहजादा आवेगा, यह कभी किसी को स्वप्न भी न आया होगा। इन विचारों के साथ हमको यह चिन्ता लगी थी कि किसी प्रकार हमारे बालकों को सभा में भजन और कविता सुनाने का अवसर मिलना चाहिए। हमने फिर उद्योग आरम्भ किया हमको जो भला और सभ्य आदमी दिखाई देता उसी से अपनी बात कहते परन्तु कोई सुनता ही न था। नौबत यहां तक आई कि हमने मंत्री के समक्ष अपनी बात की पुष्टि के लिए गवाह भी उपस्थित कर दिए जिन्होंने यह विश्वास दिलाया कि यह अछूतों के बालक है परन्तु फिर भी अर्जी मंजूर नहीं हुई। अन्त में निराश होकर हम एक जगह बैठकर विचार करने लगे और सबसे मिल यह निश्चय किया कि भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए। हम सबने मिल कर प्रार्थना की और फिर प्रयत्न के लिए खड़े हुए। अब सभापति भी आ गया था। वह पढ़ा लिखा आदमी था और मध्य प्रान्त की कानूनी कौंसिल का सभासद था। हमारे कहने सुनने पर उन्होंने यह स्वीकृति दे दी कि स्टेज पर तो नहीं, परन्तु दूसरी तरफ इनके भजन सुन लिये जावें। हमको अपने लड़कों की योग्यता पर विश्वास था, इसलिए हम इतने ही से सन्तुष्ट हो गए। लड़कों को भजन गाना था कि सबके कान उधर ही जा लगे। लोगों को सुनकर बड़ा आनन्द हुआ। बस फिर क्या था फिर तो चारों तरफ से इनके भजनों का तकाजा होने लगा। लड़कों के साथ हमारा भी सम्मान होने लगा। हमको सभापति के बराबर में कुर्सियां दी गई। थोड़ी देर में खबर

लगी कि महाराज कोल्हापुर आवेंगे और वह शीघ्र ही आ गये। इस अवसर पर कोल्हापुर नरेश ने जो व्याख्यान दिया उससे अछूतों के प्रति उनका हार्दिक प्रेम व सहानुभूति स्पष्ट प्रकट होती थी उस धर्म रक्षक शिवाजी वंशज के यह शब्द थे कि "मैं तुमको अपना भाई समझता हूँ और तुम्हारी सेवा करने को तैयार हूँ" उत्सव में कई अंग्रेज पादरी आये हुए थे। महाराज कोल्हापुर तो थोड़ी देर बैठ कर चल दिये पीछे एक पादरी साहब ने व्याख्यान दिया जिसमें हजरत ईसा मसीह और ईसाई धर्म के गुण गाये गए। सभापति के विचार बहुत अच्छे थे वह पक्का हिन्दु था उसका हमारे साथ शीघ्र ही प्रेम हो गया। उसको पादरी की बात खटकी। वह इस बात को किसी तरह भी पसन्द नहीं करता था कि उसके भाइयों पर ईसाई धर्म का प्रभाव पड़े। परन्तु साथ ही अपनी जाति की हीनावस्था से और हिन्दुओं की उदासीनता से उसका हृदय बड़ा दुःखी था। हमारा सहारा पाकर उसका उत्साह बढ़ गया और उसने खड़े होकर मीठे शब्दों में पादरी सहाब का खण्डन कर दिया। अब हम तो उनके घर वालों के समान हो गये थे वह प्रत्येक प्रस्ताव हमारी सम्मति से उपस्थित करने लगे। हम में से दिलीप वनस्थी बोलने को खड़े हुए। उन्होंने अपनी युक्ति से पादरी की बातों का खण्डन भी कर दिया और सब लोगों के दिलों पर हिन्दू धर्म का प्रभाव भी जमा दिया। सब के ध्यान आकर्षित हो गए। अन्त में जब उत्सव समाप्त हुआ तो

सभापति ने इस बात पर बड़ा हर्ष प्रगट किया और कहा कि मुझको अपने जीवन में आज दिन जैसा आनन्द कभी न प्राप्त हुआ कारण कि जिस बात का मुझे ख्याल भी न था कि हिन्दुओं में ऐसे भी आदमी मौजूद हैं जो हम से और हमारे बालकों से अपने बालकों की भांति प्रेम करते हैं, वह बात आज मैं प्रत्यक्ष देख रहा है। मैं समझता था कि कुछ आर्य समाजी ही हमारे साथ सहानुभूति रखते हैं परन्तु मेरे आनन्द की सीमा नहीं रही है जब मैं भगवद्भक्ति आश्रम की सनातन धर्मावलम्बिनी संस्था को अपने भाइयों के साथ हार्दिक प्रेम करते देखता हूँ।"

यहां पर यह भी देखने में आया कि जो अछूत ईसाई हो गए थे उनका अपनी जाति से प्रेम बना हुआ था। उनसे बातचीत की तब उन्होंने कहा कि महाराज यदि हमारी जाति की उन्नति हो जावे तो हम फिर अपनी जाति में वापिस आने को तैयार हैं और यदि साधन हो तो हम इनकी उन्नति के लिये बड़े प्रेम से काम करने को तैयार हैं।

—:o×:o—

परमात्मा और परमात्मा का ❀ उपदेश ❀

आत्मा और परमात्मा क्या वस्तु है, यह कैसे जाने जाते हैं ? प्रत्यक्ष प्रमाण से वा अनुमान या शब्द प्रमाण से। यदि कहो प्रत्यक्ष से। प्रत्यक्ष तो इन्द्रियों के बिना रुकावट विषयों के सम्बन्ध से न बदलने वाला निश्चय ज्ञान है। प्रत्यक्ष ज्ञान के पीछे अनुमान (अनुमीयते यदनुमानम्) कार्य को देख कर कारण का, कर्म को देख कर कर्ता का अनुमान होता है। जैसे सृष्टि में क्रमबद्ध, तरतीववार तरतीब और नियम पाया जाता है नियम और क्रम कर्म वाचो होने से इनका कर्ता अवश्य है। घट घड़ा, पट वस्त्र, मठ मकान इत्यादि कार्य और बनावटी होने से इनका कर्ता (बनाने वाला) अवश्य है और वह चैतन्य ज्योति है। ऐसा ठीक ज्ञान अनुमान है। यथार्थ ज्ञानी और यथार्थ वक्ता कहा हुवा वचन शब्द प्रमाण है। इन तीनों प्रमाणों से प्रमेय की सिद्धि होती है। जीवात्मा और परमात्मा के बीच में प्रकृति आ जाने से दो कहे जाते हैं। वास्तव में एक हैं। एकैव शुद्ध चैतन्य माया और अविद्या की उपाधि से ईश्वर, सर्व शक्तिमान् और सर्वज्ञ तथा जीव असर्व शक्तिमान् और अल्पज्ञ हुवा प्रतीत होता है। जब एक ही चैतन्य पर दृष्टि जाती है और उसी का ध्यान होता है

और मैं वही शुद्ध ब्रह्म हूँ इस ज्ञान से माया और अविद्या रूपी उपाधि भ्रम रूप अन्धकार ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदय होने पर रात। फिर जीव कृत्कृत्य (मोक्ष) हो जाता है। यही मनुष्य जीवन का मुख्योद्देश्य है, यही लक्ष है। प्रत्यक्ष प्रमाण से भी ईश्वर की सिद्धि होती है। मानसिक और वैज्ञानिक भी योगियों का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। योगी परमात्मा का साक्षात् दर्शन करते हैं। नास्तिक जब परमात्मा के अस्तित्व से नकार करता है उस समय उसके मन में आस्तिक की भान्ति परमात्मा का ख्याल बना रहता है। इससे सिद्ध है कि मन द्वारा उसका प्रत्यक्ष है। वेद में लिखा है "परमात्मा देखने योग्य है, सुनने योग्य है और मानने योग्य है।"

मनसैवाव द्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन।
आत्मावारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः॥

आत्मा शुद्ध मन से देखनो चाहिये देखने के साधन उसका श्रवण, मनन और निदिध्यासन हैं जैसे शरीर सहित आत्मा का सब इन्द्रयों से प्रत्यक्ष होता है ऐसे ही ब्रह्माण्ड सहित परमात्मा, का भी प्रत्यक्ष होता है।

"पिण्डे सो ब्रह्माण्डे"

सब प्रमाणों से एक अद्वितीय ब्रह्म ही सिद्ध होता है उससे भिन्न कोई नहीं है। वह ब्रह्म मैं ही हूँ इस ज्ञान का परमात्मा उपदेश करते हैं। इस ज्ञान के मानने के लिए और इसी की प्राप्ति के लिए सारे कर्म और चेष्टाएँ करनी चाहियें। शुद्धाकांक्षा से उसकी आज्ञा माननी चाहिये। उसकी आज्ञा यह ही है कि सबको अपना ही आत्मा

समझो। सब की भलाई के लिये और सब के सुख के लिये कर्म करो और प्रार्थना करो। परमात्मा को जो अपना ही आत्मा है बार बार नमस्कार करो, हाथ जोड़ कर शिर झुकाओ और लाख लाख धन्यवाद दो जिसने हमको मनुष्य जन्म ऐसे ज्ञान सुनने का अवसर और सारी सृष्टि के पदार्थ प्रदान किये हैं। जब मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है तो उसको भी भगवान् सीधे रस्ते में ले आते हैं। उसको उसका चिन्तन चाहे प्यार से चाहे बैर से हो। एक मनुष्य जब भ्रम के चक्कर में आया तो कहने लगा परमात्मा कोई चीज नहीं है। यदि है तो वह ज्ञान शक्ति नहीं प्रत्यक्ष अज्ञान की शक्ति है। जब वह बागड़ में पहुंचा तो तरबूजे और उसकी बेल को देख कर कहा कि यदि भगवान् होता तो उसे इतनी भी बुद्धि न थी कि इतनी छोटी बेल से इतना बड़ा २० सेर का फल लगाया यह फल तो बड़ पीपलों के लगाना चाहिए था, इसी तरह से जहां आज एक बद्दल बरस जाता है कल भी वहां ही बरसने को जाता है। एक बद्दल बरसते ही सारे बद्दल उसकी तरफ चले जाते हैं। उनको यह ज्ञान नहीं कि कहां और कितना पानी बरसावें। एक भेड़ कूवे में गिरने को जाती है तो सारी भेड़ उसके पीछे चलती हैं। इसी तरह से सारी सृष्टि में भेड़ा चाल है। ऐसा विचार करते २ उसने एक बड़ के पेड़ के नीचे आकर विश्राम किया। बड़ के फल को देख करके तो और भी भगवान् का अनिश्चय हुवा, इतने ही में एक पक्षी ने बड़ के फल को काटा तो वह उसकी नाक की ऐसी नस पर पड़ा जिससे उसका सारा शरीर झन्ना उठा और उसके हृदय की आंख खुल गई, वह सांजलि शिर झुका झुकाकर परमेश्वर को

नमस्कार करने लगा और उसका धन्यवाद गायन करने लगा कि हे परमेश्वर ! तू जानता था कि बड़ के नीचे तो मनुष्य आकर विश्राम और शयन करते हैं बेल के नीचे नहीं। आज वह फल मेरी बुद्धि के अनुसार यदि बड़ से लगा हुवा होता तो बस खातमा ही हो जाता। इसलिए इस देश में परमात्मा ने ऊंटों की गर्दन लम्बी बनाई है कि वह वृक्षों के पत्तों से पेट भरलें। तू जानता है कि यहां इतना बरसना चाहिये यही भले के लिये है। तेरी इच्छा, तेरा काम जीवों के भले के लिए होता है अपने लिये कुछ नहीं, इस तेरी इच्छा और काम के साथ में हम अपनी इच्छा और काम मिलावें। हमारी इच्छा कुछ न हो, तेरी ही इच्छा को परम इच्छा मान कर काम करें और कहें कि परमात्मा तेरी इच्छा पूर्ण हो मैं अपनी इच्छा इसीलिए कहता हूँ कि वह तेरी इच्छा है।

सर्वात्मकोऽहं सर्वोऽहं सर्वातीतोऽहमद्वयः।
केवलाखण्ड बोधोऽहं स्वानन्दोऽहं निरन्तरः॥

मैं सबकी आत्मा हूँ, सर्व रूप हूँ और सर्वातीत शुद्ध स्वरूप हूँ। एक राजा कहता था कि परमात्मा नहीं है अपने पुरुषार्थ से ही मैं राजा हुवा हूँ। इसी तरह से पुरुषार्थ करके सब राजा हो सकते हैं। सब वस्तुएँ प्राप्त कर लेते हैं, परमेश्वर की दया और दातृ शक्ति से हमको यह पदार्थ नहीं मिले हैं। इसलिये वह किसी भी वस्तु के मिलने पर परमेश्वर का धन्यवाद और नाम नहीं लेता था। सब को कहा करता था कि परमात्मा नहीं है। उसका नाम जप कर वृथा जीभ को क्यों थकाया करते हो। इतने समय में और पुरुषार्थ करते

तो और अधिक फल पाते। लोगों से कहता कि यदि मकान के देखने से मकान वाले का ज्ञान होता है। हिमालय पर्वत पर बिना बनाने वाले के आप ही बर्फ से कितने ही मकान बनते हैं और ढह जाते हैं। बादल वर्षा ऋतु में अनेक आकार धारण करते हैं कोई गणेश का, कोई हाथी का, कोई गाय का, कोई और किसी मनुष्य का। पानी के बरसने से बहुत सी ओषधी, बनस्पति आदि उत्पन्न होती हैं और आप ही नष्ट हो जाती हैं। यवादि के सड़ जाने से या परिणत होने से मद्य शक्ति उत्पन्न होती है ऐसे ही चार तत्वों के परमाणु इकट्ठे हो जाने से और परिणत होने से जीव शक्ति पैदा हुई है। इनकी क्रिया बदल जाने से या बन्द हो जाने से इनसे उठ कर इन्हीं में समा जाती है जैसे डले की आल डले में सूख जाती है। ऐसे ही जड़ में से चेतना उठ कर जड़ ही में लीन हो जाती है। परमात्मा कुछ नहीं वह एक डराने का हव्वा या भूत बना लिया है और उसकी बातों की कथा रचली हैं, न ग्रन्थ बनाये हुवे हैं। खावो पीवो मौज उड़ाओ ऋण करके भी घी पीवो। जब यह शरीर भस्मीभूत हो गया तो देने लेने वाला कहां रहा। इस देह से पृथक् निकल कर जाता तो अपने इष्ट मित्र व कुटुम्ब के स्नेह से फिर लौट आता। ऐसा नहीं है। जब आवेगा अन्त ऐसा ही गधा और ऐसा ही सन्त। ऐसे २ उपदेशों से आस्तिक पुरुषों का जी दुखने लगा। वह सब एक मत होकर राजा को समझाने लगे। परन्तु उसकी एक समझ में ना आई। फिर राज्याधिकारी और उसके शुभ चिन्तकों ने बन में जाकर वानप्रस्थी ऋषियों से निवेदन किया कि हमारा राजा नास्तिक हो गया है आप चलकर उसको उपदेश करें

जिससे राजा प्रजा सबका भला हो। वे आये और उन्होंने बहुत सारा उनको उपदेश किया उसने उनके सामने एक तृण रख दिया और कहा कि यदि परमात्मा है तो इसे हिलादे। है तो वह कहता क्यों नहीं कि मैं हूँ, क्या उसमें वह शक्ति नहीं है इत्यादि बेढंगा दलीलों से उनका निरादर किया। उन्होंने राज कर्मचारियों को कहा कि अब इसके उल्टे ज्ञान की नदी चढ़ रही है। चढ़ी नदी पर इंजीनियर को पुल नहीं बांधना चाहिये। जब ठिकाने आजावे तब पुल बांधने का यत्न शीघ्र सिद्ध होता है। मूर्ख एक ही अध्यापक से सीखता है और वह है आपत्ति। सहस्र टक्कर लग करके एक बुद्धि आती है। तुम सब एक मत करके इसके भाई का राज्याभिषेक कर दो और इसे नदी से उतार दो। उन्होंने ऐसा ही किया। नये राजा ने हुकम दिया कि यह मेरे राज्य से खाली हाथ जान बचा कर चला जाय नहीं तो मार दिया जायगा। तब वह अपनी बुद्धि पर विश्वास करके राज्य से बाहर चला गया। उसके इष्ट मित्र किसी ने भी उसका साथ नहीं दिया। एक वेश्या उसके साथ गई। उसने उसको कहा कि यदि आप भगवान् को मानते तो इतना दुःख क्यों उठाना पड़ता। उसने कहा अब बुद्धि से पुनः पुरुषार्थ करेंगे और इससे फिर राजा बन जायेंगे धैर्य धरो, मत डरो। वह बन में रहने लगा और ऋषियों से भिक्षा माँग कर निर्वाह करने लगा। एक रोज किसी ने कहा कि तुम्हारे भाई को ज्ञान हो गया कि वह ऋषियों का अन्न खाता है जिससे ऋषियों को दुःख होता है वह यह सुन भयभीत होकर वहां से भी चला गया और सोचने लगा कि अब मेरे पास एक ही कम्बल रह

गया है। वेश्या को उढादे तो आप अग्नि से तापै। एक रोज जब वेश्या ने उसे बहुत कहा कि परमेश्वर के न मानने का फल ऐसा ही दुःख और आपत्ति है। उसने कहा परमात्मा है ही नहीं तो उसको माने कैसे ? देख अब हम बुद्धि से पुरुषार्थ करेंगे। पहले हम चोरी करके धन लायेंगे उससे नौकर रक्खेंगे फिर डाका देंगे और बहुत से धन जन से समृद्ध होकर राजा बन जायेंगे। लकड़ी लाकर, आग जला कर उसको आश्वासन देकर और कम्बल लेकर चोरी करने चला। एक नगर में जाय एक मकान बहुत धनाढ्य का बुद्धि से विचार कर उसमें सेंध लगाई किसी को मालूम न हो इस ख्याल से उसमें कम्बल ठूंस दिया और लगा मकान में धन टटोलने। तब एक हृष्ट पुष्ट मनुष्य जागा और कहा कौन है कौन है ? वह डर से जल्दी किवार खोल कर भागा और कम्बल भी वहीं रह गया। अब भयभीत होकर सोचने लगा कि मैं जो कुछ भी करता हूँ वह पूरा क्यों नहीं होता। मेरी इच्छा के विरुद्ध करने वाला परमात्मा कोई अवश्य है। तब वह परमात्मा की प्रार्थना करने लगा, अपने किये का पश्चाताप किया, तड़फ कर और बिलबिलाकर कहने लगा हे परमेश्वर ! मैं तुम्हारा हूँ और तुम्हारी शरण हूँ। त्राहिमां त्राहिमां। अब मैं तुम्हें कभी न भूलूंगा। अब तुम्हारा नाम जपूंगा भजन करूँगा ध्यान धरूँगा और तुम्हारे सब जीवों का सेवा करूँगा। वह ऐसा ही करने लगा। लोगों में जब उसके भजन भाव की प्रसिद्धि हुई तो फिर उसको राजा बना दिया। इसलिये जो महात्मा और ऋषिमुनियों के उपदेशों को नहीं मानता और उपदेश का असर नहीं होता आपत्ति उसको ठीक कर देती है। इस वास्ते भगवान् का भजन, स्मरण, नाम

कीर्तन. ध्यान. आराधन, पूजन इत्यादि जल्दी ही सीखना चाहिए। बहुतेरे मनुष्य परमात्मा को मानते हैं कि वह कोई चीज जरूर है, ज्योति हो, शक्ति हो, प्राकृतिक हो वा अप्राकृतिक, वह जगत् से बनी हो या जगत् उससे। चर्कादि में औजार बाल की खाल उतारने वाले थे उससे भी सूक्ष्म आजकल विद्यमान हैं। एक वैज्ञानिक ने दर्वे की ज्योति के एक जर्रे को पृथक् कर उसके आवरण उतारे अन्त में परमाणु के भीतर एक ज्योति (ताकत) दिखाई दी और उसको उसने परमेश्वर माना। कोई अपने गुरु को, कोई अपनी बुद्धि को, कोई निसंग आत्मा को, कोई किसी को कोई किसी को परमात्मा अवश्य मानते हैं। चाहे वह आस्तिक हो अथवा नास्तिक। कभी कभी आस्तिक की अपेक्षा नास्तिक ज्यादा भगवान् का स्मरण करते हैं वे शीघ्र मुक्त हो जाते हैं। एक राजा महात्मा के सत्संग में जाकर उनसे प्रार्थना करने लगा कि कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे परमात्मा न भूलें। उन्होंने कहा आज से परमात्मा का नाम न लेना। उसने ऐसा ही दृढ़ कर लिया। थोड़े दिन पीछे सब को मालूम हुवा कि यह राजा परमेश्वर का नाम नहीं लेता है तो सब आस्तिकों को और विशेषकर उसकी रानी को जो बड़ी भक्त थी और नाम स्मरण करती थी दुःख हुवा। सब ने राजा से परमेश्वर का नाम कहाने के लिए यत्न किया। एक दिन एक हर लाकर राजा से पूछा कि इसका क्या नाम है। उन्होंने समझा जब राजा हर कहेगा तो हर महादेव का नाम है तो यह भगवान् का नाम इसके मुख से निकलेगा। परन्तु उनके मुख से न निकला उन्होंने कहा कि यह काष्ठ यन्त्र है, कृषि कर्षण यन्त्र है। उनसे नाम लिवाने

के लिये अनेक यत्न करते थे। वह राजा रात और दिन परमात्मा और उसके नाम का ही चिन्तन करता रहता था कि कहीं मुख से बाहर न निकल जाय। एक दिन स्वप्न में उसके मुख से राम नाम सहसा निकल गया। तब तो रानी सुन कर बहुत प्रसन्न और प्रफुल्लित हुई। उठते ही बहुत दान पुण्य और उत्सव मनाने लगी, क्योंकि वह बड़ी आस्तिक थी। उसको ऐसा करते देख राजा ने कहा कि इस का क्या कारण है जो तुम आज ऐसी खुशी मना रही हो। रानी ने कहा आप परमेश्वर का नाम नहीं लेते थे मुझे इस बात का बड़ा दुःख था। रात को स्वप्न में आपके मुख से राम नाम सुनते ही बड़ा आनन्द हुवा है। राजा ने आश्चर्यान्वित होकर कहा कि मेरे मुख से उसका नाम निकल गया क्या यह सत्य है ? रानी ने उत्तर दिया हाँ यह सत्य है। यह सुन कर राजा तुरन्त ही पंचत्व को प्राप्त हो गया और परमात्मा में जाकर मिल गया। इसलिये नास्तिक आस्तिक, धर्मी अधर्मी, ज्ञानी अज्ञानी का बाह्य व्यवहार से पता नहीं लगता है। शत्रुता से, मित्रता से, भय से, लोभ से परमात्मा का ख्याल निरन्तर चित्त में रहे उसी से परमात्मा प्रसन्न और प्राप्त होता है। अन्य का रहे तो अन्य को प्राप्त होता है।

जो मन नारी की ओर निहारत तो मन होत है ताहिको रूपा।
जो मन काहू से क्रोध करे, तब क्रोध मयी हो जाय तद्रूपा॥
जो मन माया ही माया रटे नित, तो मन द्रवत माया के कूपा।
सुन्दर जो मन ब्रह्म विचारत, तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा॥

सति सक्तो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया ।
कीटको भ्रमरी ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते ॥

जैसे भ्रमरी का ध्यान करता कीट भ्रमरत्व को प्राप्त होता है वैसे ही एक निष्ठा से ब्रह्म का ध्यान करता पुरुष ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है। अतएव हम सब को सावधान हो कर बार बार ब्रह्म का ही चिन्तन करना चाहिये। गीता में भगवान् ने कहा है—

अन्त काले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भाव याति नास्त्यत्र सशयः ॥
य यं वापि स्मरन्भावं त्यजन्त्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः ॥

अन्तकाल में जो पुरुष मेरा स्मरण करता हुवा देह को छोड़ता है वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है। हे कौन्तेय ! पुरुष अन्त काल में जिस जिस भी पदार्थ का स्मरण करता हुवा देह को छोड़ता है वह सर्वकाल उसी की भावना वाला होने से उसी उसी पदार्थ को प्राप्त होता है।

मनुष्य के विचारने योग्य

अद्भुत ज्ञान की बात

अपने चारों ओर सृष्टि की रचना की बहुतायत को देखकर स्वाभाविक विचार होता है कि इसको किसने और किस लिये बनाया है। सुनने में आया कि इसको परमात्मा ने जीवों के कर्मानुसार सुख, दुःख भोगने के लिये बनाया है जिससे परमेश्वर के महत्व और कारीगरी, विचित्र रचनायें देखकर परमेश्वर का ज्ञान होवे और जगत् से वैराग्य होवे। जिससे केवल परमात्मा के स्वरूप को जीव चिन्तन करता हुवा परमेश्वर को प्राप्त हो जाय। यही इसका मुख्यो-देश्य है परन्तु हमको नाना प्रकार का दुःख, क्लेश, यन्त्रणायें होती हैं और दीखती हैं। तो यही विचार होता है कि परमेश्वर ने इस जगत् को क्यों बनाया जिसमें जीवों को इतना दुःख होता है, न बनाता तो अच्छा होता क्योंकि जीव भी सुखी रहते और आप भी शान्त मौज में सोता रहता। ऐसे बखेड़े में पड़ना परमात्मा की बुद्धिमानी का काम नहीं है परन्तु हम इससे डरते हुवे कहते हैं परमात्मा की महिमा, माया, लीला अपार है जिसको वेदादि, ऋषि मुनि, देवता कोई भी पार नहीं पा सकता है। उसका ज्ञान समुद्र के समान है और हमारी बुद्धि कुल्हवा वत् है। कुल्हवा में सारा समुद्र कैसे भर सकता है ऐसे परमात्मा सी रचना और महिमा हम बुद्धि द्वारा कैसे जान सकते हैं।

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"

परन्तु हम किन्हीं किन्हीं शास्त्रों के वचनों से और अपने नित्य

के अनुभव से यह निश्चय करते हैं कि बहुतेरे जीवों में विशेषकर मनुष्यों में जन्म से ही दुःखी, दीन, नीच, लंगडे, लूले, अन्धे, अपाहज, रोगी, मन्द बुद्धि वाले, मलिन, कुरूप इत्यादि दूसरी ओर सुखी समृद्ध, सुडोल, सुन्दर, अच्छी आंखों वाले, सर्वाङ्गों से हृष्ट पुष्ट, अच्छी स्मृति, बुद्धि व कुल वाले हैं, राजा हैं, संन्यासी हैं, ब्राह्मण हैं, एक पालकी पर चढ़कर चलता है ये सब विषमतायें कैसे उत्पन्न हुई हैं। यदि कहो कि पूर्व कर्मों के अनुसार जैसे २ जीव ने शुभाशुभ कर्म किये हैं यह उनका फल है। जिन्होंने पुण्य कर्म किये हैं, दूसरे जीवों को सुख दिया है, दान पुण्य किया है वे सुखी हैं और जिन्होंने विपरीत किया है वे दुःखी हैं। आगे भी इसी प्रकार से समझना। तो अब प्रश्न होता है कि यदि मनुष्य को अपने पिछले कर्मों का ज्ञान होता कि मैंने पूर्व जन्म में अमुक पाप किया था उसका यह दुःख रूपी फल मुझे मिल रहा है और अमुक पुण्य कर्म किया था जिसका फल मुझे यह सुख मिला है तो कोई भी पाप कर्म न करता, सब के सब पुण्य रत रहते। जब तक कोई अध्यक्ष अपराध करने वाले के चित्त पर अपराध सिद्ध करने का प्रमाण न दे देवे तब तक उसे दण्ड देने का अधिकार नहीं है। इसलिए परमात्मा हम को शुभाशुभ का ज्ञान न कराता और पीछे दण्ड और पुरुष्कार देता तो अच्छा होता। एक यवन आचार्य से पूछा गया कि "यह सृष्टि सग्राम रूपा और सुखी दुखी किसने बनाई है" उसने कहा "खुदा ताला ने" "उसने किसी को जन्म से सुखी और किसी को दुःखी क्यों बनाया उसके लिए तो सब पुत्रवत् समान हैं ?" तो उत्तर मिला कि "इसकी कतारें बनाई

हुई हैं इनमें दु खी चलते रहें इनमें सुखी चलते रहें। वह परस्पर दूसरों को देखकर सुखी दुखी होते रहे। बस यह उसकी मर्जी-कुदरत है आगे हम कुछ नहीं जानते।" परमेश्वर के लिए यह कभी ठीक नहीं हो सकता कि किसी को बिना ही कारण के दुखी सुखी बनावे। वह तो पक्षपात रहित है, वह करुणावरुणालय है, और अपार दया करने वाला है। ऐसे ही एक बार ईसाइयों के बड़े आचार्य से पूछा कि "तुम लोग पूर्वले जन्म ही नहीं मानते तो यह सृष्टि किसने रची है ?" उसने कहा "ईश्वर ने" अब प्रश्न होता है कि उसने एक को जन्म से ही लंगड़ा, लूला, अन्धा क्यों बनाया ? और दूसरे को सुडौल, सर्वांग सुन्दर सुखी क्यों बनाया ? अपनी मर्जी से बिना पुण्य पाप किये बनाया तो वह ईश्वर समदर्शी, पक्षपात रहित नहीं हो सकता। परमेश्वर सबको दु खी सुखी बनाता तो सब वेदों में और शास्त्रों में और महात्माओं ने एक स्वर से यह कहा है कि परोपकार करो, दुखियों के दुःख दूर करो, अन्धों को आंखें दो, रोगियों के रोग दूर करो, कंगालों को धन दो और भूखों को भोजन। जो राजा किसी अपराधी को कारावास में डालदे जैसे उसके मुक्त करने वाले को दण्ड मिलता है इसी प्रकार से यह सुखी दुखी परमेश्वर ने बनाये होते तो इनके विरुद्ध कर्म करने वालों को परमेश्वर दण्ड देता पर ऐसा नहीं है। इसके विपरीत उनको स्वर्गधाम और मोक्ष की प्राप्ति कराता है। इससे सिद्ध है कि दुःखी सुखी जो सन्तान उत्पन्न होती है वह माता पिता के कर्म से होती है। वेद में कहा है कि माता पिता गर्भाधान से पूर्व अमुक अमुक कर्म और भोजन कर और पीछे संकल्प करें कि हम

एक शूरवीर और भक्त सन्तान को उत्पन्न करें। रामचन्द्र जी की माता जब वह गर्भ में थे तो अग्निहोत्र करती थी और पश्चात् परमेश्वर से प्रार्थना करती थी "कि हे परमेश्वर ! हमारे गर्भ से स्वय अवतार लो और भारतवर्ष को और सब दीन, दुखियों को सुख दो और अत्याचारियों से मुक्त करो। सुख और शान्ति प्रेम, भक्ति सबके साथ में समान बर्ताव करो।" अभिप्राय यह है कि उनके माता पिता के संकल्पों का ही फल था जिससे रामावतार हुवे। ऐसे ही देवकी और वसुदेव चाहते रहते थे कि हमारे गर्भ से भगवान् अवतार लें और सारे संसार के लिये मुक्ति का द्वार खोल दें। ठीक वैसा ही हुवा। उनका उपदेश गीता में सबके लिए समान है। एक ऋषी जब उनकी पत्नी के गर्भ रहा तब से वह उनको देव वाणी, वेद के मन्त्र और शास्त्रार्थ करने की कथा सुनाया करते थे। तो उनके जो पुत्र थे वह गर्भ में स्थित ही अपने पिता के उच्चारणको अशुद्धि बतलाने लग गये। उन्होंने क्रोध करके लात मारी जिससे लड़का आठ जगह से टेढा पैदा हुवा। उसका नाम अष्टावक्र था। वह बड़ा महात्मा, पण्डित और ज्ञानी हुवा है। एक समय वह राजा जनक की सभा में गया। उसको ऐसा कुरूप और टेढ़ा मेढ़ा देखकर जनक सहित पण्डितों की सारी सभा हंस पड़ी। उनको देखकर आप भी बड़े खिल खिला कर हंसे। उनको हंसता हुवा देख कर राजा जनक व पण्डितों को बड़ा आश्चर्य हुवा और हंसने का कारण पूछा। अष्टावक्र ने कहा कि मैंने सुना था जनक और उसके सभासद विद्वानों की परीक्षा करते हैं और बड़े ज्ञानवान् हैं परन्तु यहां तो मैंने देखा कि कसाई और चमार हैं।

क्योंकि कसाई हड्डियों की परीक्षा करता है और चमार चमड़े की यह सुनकर सब बड़े लज्जित हुवे. उनको प्रणाम किया और उत्तम आसन दिया। यह सब आदर पिता के उस कर्म का फल है जो यह ज्ञान की कथा सुनाया करते थे। और उनको देखकर हंसना आदि निरादर पिता के पदाघात रूपी कर्म का फल है वह ऐसा ज्ञानवान् और कुरूप न तो भगवान् ने ही बनाया और न उसके पहले जन्मों के कर्मों का ही फल था। ऐसे ही माता के कर्मों का फल सन्तान को और सन्तान के कर्मों का फल माता पिता को भोगना पड़ता है। उपनिषदों में कहा है कि मनुष्य चाहे जैसी सन्तान पैदा कर सकता है। लिखा है कि बहुत पण्डित और अच्छा पुत्र उत्पन्न करना हो तो क्षीर और चावल घी मिला कर खाय तो ऐसा पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ होवें, ऐतरेय उपनिषद् में लिखा है पिता जो अन्न और जल आदि का आहार करता है उससे वीर्य उत्पन्न होता है। जीव का वीर्य रूप से पिता के शरीर में स्थित होना प्रथम जन्म है। जब वह गर्भाधान द्वारा स्त्री के शरीर में अंगभूत हो करके स्थिति करता है वह जीव का दूसरा जन्म है। गर्भ से उसका जो बाहर आना है वह तीसरा जन्म कहाता है। यह मरण में जीव को दुःख का कथन है वह वैराग्य के वास्ते है। पिता से सन्तान की आकृत्ति आती है। अब भी सूक्ष्म वीक्षण के द्वारा वीर्य को देखा गया है तो पुरुष के शरीर की सारी शकल विद्यमान थी। जब वह स्त्री के गर्भ में होता है तो स्त्री के खाने पीने का जो रस बनता है उससे और जो उसका खून ठहरता है उससे उसका शरीर बनता है कई पुश्तों तक आदमी पहचाना जाता है कि यह

अमुक का पुत्र, पौत्र व प्रपुत्र है। किसी की शकल सूरत उसकी माता पर और किसी की निगाह और ध्यान से और पर भी जाती है। गर्भवती एक गोरी स्त्री के कमरे में एक हब्शी की तस्वीर थी। जिसे वह बार बार देखती और चिन्तन करती रहती थी। जब उसके बालक जन्मा तो वह हबशी के रूप का था। उसको देखकर अंग्रेजों ने बड़ा आश्चर्य किया और हिन्दुओं में निगाह और चिन्तन करने से शकल सूरत बदल जाती है इस उसूल को सच जाना। ऐसे ही उग्रसैन को रानी की राक्षश पर निगाह पड़ने से कंस हुआ। इस वास्ते गर्भावस्था में स्त्री की बड़ी रक्षा करनी चाहिये। वह अपने पति की मूर्ति का ध्यान करे, देखे या अपनी तस्वीर को दर्पण में देखे, राम कृष्णादि अवतारों की, देवताओं की, ऋषिमुनि महात्माओं की मूर्तियों का ध्यान करे। उनके जीवन चरित्रों की कथा सुने। क्षीर, चावल, दूध, फल, ब्रह्मी, वंशलोचन, ज्योतिष मति, गिलोय, गाय का घी और शहद इत्यादि का सेवन करे। कभी किसी प्रकार का शोक क्रोध और दुःख पति को चाहिये उसे न होने दे। खोटी नीच स्त्री से बात चीत नहीं करने दे। एकान्त अच्छे स्थान में रक्खे। बनों में, जंगलों में, बागों में, फूलों में, साधु महात्माओं के दर्शनों को उसे ले जाय और उसकी जो इच्छा हो उसे पूरी करे। कर्ज लेना बुरा है परन्तु गर्भावस्था में कर्ज लेकर भी अच्छी वस्तु खिलावे और अच्छे मकान में रक्खे तो लड़का अवश्य ज्ञानवान्, धैर्यवान् और पराक्रमी हो गर्भ के अन्दर जब अभिमन्यु था तो श्रीकृष्ण भगवान् ने उसकी माता को चक्र व्यूह तोड़ने की कथा सुनाई थी। वह अभिमन्यु को सोलह वर्ष

की आयु में ज्यों की त्यों याद रही। ऐसे ही आल्हा, ऊदल व बोनापार्ट जब यह अपनी माताओं के गर्भ में थे उस समय इनकी मातायें लड़ाइयों में सिपाहियों को पानी पिलाती थीं। और युद्ध का दृश्य देखती थी और सुनती थी। इनके लड़कों ने पैदा होकर जब से सुरत संभारी तब से मरण पर्यन्त लड़ते ही रहे। गर्भ के समय माता जो कुछ खायेगी, देखेगी, सुनेगी और ख्याल करेगी वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी। इसलिये माता पिता को चाहिए कि वह सन्तान के लिये अच्छा काम करे जिससे वे सुख पावें। सन्तान के सुख दुःख और पाप पुण्य का उत्तरदायी माता पिता हैं। परमात्मा किसी को दुःखी, दीन, कंगाल, अंगहीन, पराधीन नहीं बनाता है। वह तो इनसे छूटने और छुटाने का उपदेश करता है, इन सब से असंग है। और जो यह कहा जाता है कि "हारे के हरि नाम" जब चन्देरी का राजा शिशुपाल कृष्ण से लड़ाई में हार गया उस दुःख से दुःखी होकर अग्नि में जलने लगा तो उससे मगध के राजा जरासिन्धु ने उसको जलने से रोका और कहा:—

यथा दारुमयि योषिन नृत्यते कुहकेच्छया।

बनोवास में राम ने कहा था:—

नात्मनः काम कारोहि पुरुषोऽयमनीश्वरः।

किसी की अपनी मर्जी नहीं चलती यह पुरुष अनीश्वर है।

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति"।

जब मनुष्य का पुरुषार्थ और बुद्धि कोई काम नहीं देते उस समय परमात्मा की शरण में आना पड़ता है और उसी को कर्ता,

धर्ता, धाता, विधाता मानना पड़ता है।

करण करावन आपही आप, मानुष के नाहीं कछु हाथ ॥

यह भक्ति प्रेम की महिमा है। जैसे नाना प्रकार के जन्मों को धारण करना, जन्म मरण और गर्भ के दुःखों को वर्णन करना वैराग्य के वास्ते है ऐसे ही ऐसे शब्द भक्ति की महिमा और सन्तोष के लिये हैं। अब रही पुण्ययोनि और पापयोनि, कंगाल और भागवान्, राजा और रंक, नीच और ऊँच। सो यह भी परमेश्वर ने नहीं बनाये और न बनाता है। यह मनुष्यों की व्यवस्था करने वाली समाज के दोष और गुण से हैं। ब्राह्मण, भंगी, राजा, रंक यह सब यहां की बुरी व्यवस्था के फल हैं। परमेश्वर ने सब को एक जैसा पैदा किया है। इसलिये परमेश्वर तो कल्याण और मोक्ष और जब मनुष्य का कोई साथी नहीं होता है तब उसका साथी और सहायता करने वाला है। वह हमारा सबका एक तरह का आत्मा है। हमारा उसके साथ ऐसा ही घनिष्ट सम्बन्ध है जैसा तरंग, झाग और बुद्बुद् का समुद्र या पानी से। हमें परमात्मा पर पूरा भरोसा और विश्वास रखना चाहिए। जो कोई बात नहीं होती है तो अपने विश्वास को कमी के कारण हो नहीं होती है। एक महात्मा ने कहा है "यदि तुममें राई भर भी विश्वास हो तो तुम्हारी आज्ञा से पर्वत डोलने लग जांय" इसी तरह से यह जो बड़े २ महात्मा और भक्त हुवे हैं उनका परमात्मा में अटल विश्वास था। यह निश्चय रखना चाहिये कि जो अपनी मर्जी के विरुद्ध काम हुवा है वह परमात्मा का किया हुवा और अपने बहुत भले के लिये है। परमेश्वर सदैव अपना भला ही करता है।

"यद्विधात्रा विधीयते तच्छुभाय भवति।"

जो परमात्मा करता है वह भले के ही लिये होता है एक राजा के वजीर का ऐसा ही निश्चय था। राजा की एक समय अंगुली कट गई तो सब सभासदों ने शोक और दुःख प्रकट किया कि महाराज को अंगुली कट गई यह बहुत बुरा हुवा। उस वजीर ने कहा कि— 'यद्विधात्रा विधीयते तदेव शुभाय भवति।" जो कुछ परमेश्वर करते हैं भले ही के लिये होता है। इस शब्द को सुनकर राजा बहुत नाराज हुवा और गुप्त रूप से उसको मारने की ठानी। जब एक दिन वे शिकार को गये तो राजा वजीर को लेकर और सब नौकर चाकरों को छोड़ दूर घने जंगल में चले गये। वहां उनको प्यास लगी। राजा ने वजीर को कूवे से पानी खेंचने की आज्ञा दी। उसने पानी पिलाया जब दुबारा लोटा फांसा तो उसको कूवे में धकेल दिया। राजा वहां से चल दिया, दिन छुप चुका था वह रास्ता भूल गया और वन आदमियों के गाँव के पास एक बड़ के पेड़ से घोड़ा बांधकर विश्राम करने की बात सोचने लगा। उसी समय ढोल बजाते हुवे कुछ आदमी आये और राजा को पकड़ लिया। उनको देवता पर बलि चढाने के लिये एक मनुष्य की आवश्यकता थी। जब राजा को बलि चढाने लगे तब उनके पुरोहित ने कहा कि इसके कपड़े उतार कर अंग देखो कोई खण्डित तो नहीं है। देखा तो अंगुली कटी हुई थी! तब पुरोहित ने कहा कि खण्डित अंग भंग की बलि देवता पर नहीं चढ़ती है और वह छोड़ दिया। राजा ने सोचा और विचारा कि उस वजीर का मत बहुत ठीक था। अंगुली कटी तो जान बची नहीं तो यहां पर बचने का

और कोई उपाय न था। तब उस कूवे के पास आया और मन्त्री को कूप के बाहर निकाल कर अपने अपराध की क्षमा कराते हुवे कहा कि "भगवान् जो कुछ करते हैं भले के लिये होता है" यह आपका मत बहुत ठीक था। मेरी अंगुली कटी तो जान बची। पर एक शंका है इसे भी निवारण करो। तुमको कूप में गिराने से तुम्हारा क्या भला हुवा? वजीर ने कहा श्री महाराज! हम दोनों साथ में होते तुमको तो अंगुली कटी देख कर छोड़ देते और मुझे बली चढा देते। कूप में गिरने से मेरी जान बच गई।

माधव हरि हरि हरि मुख कहिये॥
हमते कछु न होवे स्वामी, ज्यों राखे त्यों रहिये॥
राम ज्यों राखे त्यों रहिये॥
जो कछु करे भलो कर माने, कबहु बुरो ना कहिये॥

एक राजा नास्तिक था। अपने पुरुषार्थ और बुद्धि पर ही भरोसा रखता था। जब जिहाज में बैठ कर कहीं विदेश को जा रहा था तो सहसा रास्ते में तूफान आगया और जहाज डूबने लगा तब उसे कोई उपाय न दीखा तो घबड़ा कर और बिल बिलाकर दीनता से प्रार्थना करने लगा कि हे परमेश्वर! किसी तरह बचा। वजीर ने राजा का हाथ पकड़ कर कहा आप तो परमेश्वर को नहीं मानते थे। राजा ने कहा कि भाई आखिर मानना ही पड़ता है। इसलिये परमेश्वर को मानना उस पर विश्वास रखना, उनके गुणों का कीर्तन करना, नाम जपना और दूसरे से जपाना यह मनुष्य का सबसे बड़ा कर्म है, इससे जीव दुःखों से छूट कर मोक्ष को प्राप्त होता है।

हजरत साहब ने कहा है परमेश्वर का विश्वास करो पर ऊँट के पाँव बाँध कर रक्खो।

यत्ने कृतेयदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः ।

अतएव भरसक प्रयत्न करना चाहिये जिससे परमात्मा प्राप्त हों। परमेश्वर सुख से, दुःख से, संकल्पों से, बुद्धि से, सब से परे शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, निराकार, ज्योति स्वरूप है। वैसा ही हमें होना चाहिये। लोग कहते हैं परमात्मा पुण्य कर्मों के करने से प्रसन्न होता और पाप करने से अप्रसन्न होता है। इसको जाने उसको जाने, स्तुति करने से राजी अमुक से नाराजी इत्यादि बातें जीवों को होती हैं, परमात्मा तो इन्हों से रहित है। जीव बड़े से बड़ा सुख और शान्ति का पद चाह सकता है। उससे भी बढ़कर परमात्मा है। उसमें बड़ो से बड़ा प्रेम की किरणें आनन्द और शान्ति की लहरें अपने सुनहरे रूप में और आनन्द और प्यार के रूप में जब जीव को स्पर्श करने लग जाती हैं तो वह कृतकृत्य हो जाता है। मानो उसका मित्र अपने हाथों से अपनी ओर बुलाता रहता है। बड़े से बड़ा आनन्द, प्रेम, सौन्दर्यता, मिठास, मधुरता, पवित्रता, उत्तमता सबके सब अपने से बढ़ कर सुख, शान्ति, प्रेम, पवित्रता आदि अपने श्रोत-कारण को दिखाते हैं। परमात्मा प्रेम स्वरूप है, ज्ञान व प्रकाश स्वरूप है, पुण्य स्वरूप है, सुख स्वरूप है।

यद्वि ज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः, आनन्द रूप अमृतं यद्विभाति।

जो विज्ञान-अपने अनुभव से देखता है वह आनन्द अजर-अमर, मोक्षरूप जो प्रकाश करता है जो बाहर भीतर प्रकाश को भान्ति

छाया हुवा है, उसी को पूजों, प्रणाम करो और उसी का लाख लाख धन्यवाद करो जिसने हमको भक्ति करने का अवसर दिया है।

"प्रिय पुत्रात्प्रिय वित्तात्प्रिय सर्वस्मात् ।"

उसको पुत्र से भी बढ़ कर प्यार करो धन से स्त्री से सब से बढ़ चढ़के प्यार अपने आत्मा परमात्मा से करो। उससे किसी प्रकार की भी प्रार्थना करोगे वह अवश्य तुम्हारी पूर्ण करेगा। उसके कभी कभी देर तो है पर अंधेर नहीं है। जो सब कुछ परमात्मा ही को मानता है और चाहता है वह वही हो जाता है। सब जगत् उसी से उत्पन्न हुवा है, उसी में चेष्टा करता है, और अन्त में उसी में लय हो जाता है। इसलिये यह जो सब कुछ प्रतीत होता हैं वह परमात्मा ही है। मनुष्य का यदि यह विश्वास हो जाय कि मैं मर कर परमात्मा को ही प्राप्त हूँगा तो वह प्राप्त हो जाता है और कर्म किसी प्रकार की रुकावट नहीं करते।

'जातेव न जायते कोन्वेनं जनयेत पुनः विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'

जिस मरने से जग डरे, मोय बड़ो आनन्द ।
कब मरहूँ कब पायहौं, पूरण परमानन्द ।। (कबीर)

इस वास्ते सब मनुष्य को जाति पाति, छूवा छूत तथा ऊँच नीच का विचार छोड़ कर एक गायत्री मन्त्र विश्वास व श्रद्धा भक्ति के साथ जपना चाहिये। यह मन्त्र बहुत छोटा सा है परन्तु इसका अर्थ बहुत बड़ा है। यों तो ओंकार के अर्थ में ही ज्ञान और विज्ञान सब आ जाता है अकार, उकार, मकार और मात्रा में सारे नाम और उनके जपने का फल मिलता है। व्याहृति, गायत्री और ओं इनका

उपनिषदों में माहात्म्य और अर्थ स्मृतियों में याज्ञवल्क्यादिकों ने विस्तार पूर्वक कहा है। कितनी ही गायत्री पर स्वतन्त्र पुस्तकें हैं। गायत्री व्याख्या, गायत्री तन्त्र, गायत्री मीमांसा, गायत्री पटल इत्यादि। हिन्दू जाति में आजकल संगठन की बड़ी आवश्यकता है जिस जाति का एक मन्त्र नहीं होता है उसका संगठन होना भी असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। पूर्वोक्त कथन के अनुसार सब मनुष्य परमात्मा के लिये एक हैं। इसलिये भगवान् ने कहा है:—

"संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्"।

"समानो मन्त्रः समिति समानि"।

मनुष्य पांच वर्ष के पश्चात् जब से वह सुरत संभालता है मरण पर्यन्त जो जो काम, संकल्प और स्मरण करता है वैसा ही मर करके होता है। जो यहां करता है, सुनता है वही स्वप्न में देखता है। इस जीवात्मा के पांच शरीर हैं। पहला स्थूल शरीर है जिसमें कि पार्थिव तत्व विशेष है और तत्व गौण रीति से हैं। यह पृथिवी का बुलबुला है। वेद में कहा है:—

"भस्मान्तं शरीरम्"

यह शरीर अन्त में पृथिवी ही में मिल जाता है। इसके सहित चैतन्य को वा आत्मा को विश्व नाम से कहा है। इसका सम्बन्ध वैश्वानर विष्णु विराट से है। इसका स्थूल शरीर यह सारा जगत् है "पिण्डे सो ब्रह्माण्डे" इनके आत्मा और शरीर की समष्टि व्यष्टि रूप से एकता है। दूसरा सूक्ष्म शरीर है जिसके द्वारा स्वप्न देखता है। उस आत्मा को तैजस कहते हैं। उसका सम्बन्ध ब्रह्मा से है। वेद

में कहा है:—

"यदिदं मनः स ब्रह्म।"

जो यह मन है वही ब्रह्मा है इसका सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से विस्तृत और शक्तिशाली है। सिद्धि, करामात, विशेष शक्ति स्वल्पमो इच्छा से सब कुछ सिद्ध कर देता है। इसका रंग रूप उपनिषदों में धूसरी ऊन, हल्दी, इन्द्र गोपा और पट बीजना की चमक के समान है। तीसरा कारण शरीर है और उसका अभिमानी आत्मा प्राज्ञ है। उसकी एकता ईश्वर के साथ में है। यह तीन प्रकार के चैतन्य आत्मा और शरीर मायिक हैं। इस कारण शरीर में जीवात्मा को दोनों प्रकार का ज्ञान नहीं रहता। न यह संसार है न यह बाहर जो कुछ है वह और न 'मैं हूँ, मैं हूँ' का ज्ञान रहता है। वह केवल अज्ञान और आनन्द का अनुभव करता है। जाग करके कहता है "मैं बड़े आनन्द से सोया कि मुझे कुछ सुधि न रही" जैसे स्थूल शरीर का सम्बन्ध पृथिवी से बतलाया ऐसे ही सूक्ष्म का वायु के साथ है। वह आकाश का बुलबुला है। चौथे महाकारण का महत्व से और अव्यक्त का और तुर्य शरीर का ऐसा ही सम्बन्ध है। पांचवां तुर्यातीत केवल शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। स्थूल शरीर को छोड़ कर जीव सूक्ष्म शरीर को अविद्या से ग्रहण कर लेता है। उसमें स्थूल शरीर से कहीं बढ चढ कर शक्ति है। जैसे सरकण्डे को गांठ तोड़ने से सूक्ष्म थोर निकलता है और फिर उसमें से तुली निकलती है। ऐसे ही जीव के शरीर रूपी खोल सूक्ष्म से सूक्ष्म, नवतर से नवतर, कल्याणतर से कल्याणतर और पश्चात् तुलो रूपी शुद्ध चैतन्य स्वरूप

प्राप्त हो जाता है। जब मनुष्य मरता है तब उसके नाड़ी नस सब ढीले पड़ जाते हैं और जैसे गूलर पक करके गिर जाता है। वैसे ही यह स्थूल शरीर गिर जाता है और सूक्ष्म शरीर को लेकर जीव निकल जाता है। मरने से पहले मनुष्य में मरने के कुछ चिन्ह प्रकट भी हो जाते हैं। बात को भूल जाना, अरुन्धती और ध्रुव का न दीखना, कान मून्द करके जो अनहद बाजे भीतर वैश्वानर अग्नि से बाजते हैं उसके मन्द हो जाने से सुनाई नही देते, दीपक में गन्ध नहीं आती, आंख से नाक को फुलक नहीं दीखती, स्वप्न के द्वारा मालूम होना इत्यादि। जब मनुष्य मरता है तो मुमुर्षु की पहले आंखं निठरती हैं, नाभि तक न पहुँच कर श्वास ऊपर ऊपर से आने लगता है और जैसे तृणजलायुका-जोख अपने दो पैरों को आगे जमा कर पिछले पैरों को उठा लेती है, और जैसे मनुष्य चलता हुवा एक पैर को आगे जमा कर पीछे दूसरे पैर को उठाता है इसी प्रकार से जोवात्मा अविद्या से चलाया हुवा सूक्ष्म शरोर पर अपनी शक्ति और स्वत्व जमा कर स्थूल शरोर से अपनी शक्ति को खेंच लेता है और उसके हाथ पैर ठण्डे हो जाते हैं। हृदय के पास उष्णता आ जाती है तब हृदय का अग्रभाग खुल जाता है और वह आत्मा इस शरीर से निकलता है, आंख द्वारा, कान द्वारा, मूर्द्धा, दसवां द्वार जैसी उसको उपासना या ख्याल होता है उसके द्वारा निकल कर वायु को प्राप्त होता है। जैसे यहां पृथिवो का स्थूल शरोर भूलोक में रहता है ऐसे वहां भूवर्लोक में वायु का सूक्ष्म शरीर रहता है उस सूक्ष्म शरीर को आयु स्थूल शरोर से दुगनी होतो है। मरते समय जो उन्नति का

देवता रहता है वह उसकी उन्नति कर देता है। वह मर करके ब्रह्मा, विष्णु, महादेव या कोई बड़ा देवता बन जाता है। गन्धर्व, पित्तर, किन्नर वा और कोई भूत प्रेत का शरीर धारण कर लेता है।

मनुष्य को आठ प्रकार की सिद्धियें होती हैं वह देवताओं या भूतों की उपासना से होती है। और उनको (देवताओं या भूतों को) स्वतः सिद्ध होती हैं मुमुर्षु के निकट आये हुवे सम्बन्धियों को चाहिये कि किसी तरह का कोलाहल, शब्द, रोना, धोना आदि न करें। गीता का उपदेश सुनावें कि तू अब परमात्मा के दर्शन करेगा, परमेश्वर को प्राप्त होगा, भगवान् के नाम लेने से तेरे सब पाप नष्ट हो गये अब तू अन्त समय उसी का ध्यान लगा, ओं का स्मरण कर। 'अन्त मति सो गति" अन्त में परमेश्वर का स्मरण कर तू इरादों और संकल्पों का बना हुवा है, जैसा संकल्प करेगा वैसा स्वयं हो जावेगा, तू स्वयं परमात्मा है। तेरे ही संकल्प से बाय आदि बीमारियों में, योग से चित्त भंग होने में, स्वप्न में, मरते समय, अपने ख्याल से या सुनने के संस्कार से स्वयं तू वैसा ही बन जाता है। तेरे सिवाय कुछ नहीं। अपने आत्मा को परमात्मा रूप से चिन्तन कर जब रज्जु को सर्प रूप से चिन्तन किया जाता है तो भय कम्पादिक होते हैं। और जब रज्जु रूप का ज्ञान होता है तब भय कम्पादिक निवृत्त हो जाते हैं। जब आत्मा के अज्ञान से नाम रूपात्मक जगत्, जन्म, मरण, लोक पर परलोक भासने लगते हैं और जब अधिष्ठान रूप आत्मा का ज्ञान होता है तब सब निवृत्त हो जाते हैं। पास बैठने वाले सब मनुष्यों को परमात्मा का चिन्तन करना चाहिये और धीरे

धीरे ओं का जाप। क्योंकि उस समय स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर के सब परमाणु निकल कर दूसरे शरीर का संगठन करते हैं। उस समय शान्त वातावरण होना चाहिये। सब लोग शान्ति से परमेश्वर से प्रार्थना करें कि इसकी सद्गति हो, इसके कर्म इसका पीछा न करें, सब नष्ट हो जांय। मनुष्य को जो अपने लिये चाहता है वह दूसरों के लिये करना चाहिये। इसी मार्ग से चलना और चलाना चाहिये। रोम रोम से परमात्मा का नाम जपना और चिन्तन करना, पिण्ड को ब्रह्माण्ड के साथ मिला कर परमाणु परमाणु से ओं ओं कहना। सारा जीवन और इसमें जो कुछ कर्म है सब परमात्मा को समर्पण कर देना चाहिये। प्यारी से प्यारी वस्तु परमात्मा के नाम पर दान कर देनो चाहिये। जैसे मोरध्वज ने अपना पुत्र, बहुतेरे राजा ग्रहण के समय में अपनो रानियों को और जगदेव ने अपने शिर को, राजा शिवि ने अपने मांस को, राजा दधिचि ने अपनी हड्डियों को और राजा बलि ने अपने सर्वस्व को परमात्मा के नाम पर दान कर दिया था तुम भो वैसा ही करोगे तो संसार से पार हो जाओगे। क्योंकि मनुष्य अब उन्नति करते करते परमेश्वर को ही प्राप्त होगा वह मर करके कीड़ा मकोडा तो होने का नहीं। जहां कहीं ऐसा कहा गया है केवल वैराग्य के लिये है। तुम श्मशान को जाओगे तो वहां महादेव रहते हैं तुम्हारी भस्म को अपने शरीर से लपेटेंगे, तुम्हारी हड्डियों की माला पहिनेंगे, तब तुम्हारा आत्मा परमात्मा में लय हो जायेगा, फिर जन्म मरण कहां? तुम जलों में प्रवाह करे जाओगे तो वहां विष्णु भगवान् रहते हैं उनको प्राप्त होगे। प्यासा पुरुष भी जल को अभि-

लापा केवल इसीलिये करता है कि उसमें परमात्मा निवास करते हैं। जगल में यदि तुम्हारा शरीर डाला जायगा तो वहां नरसिंह भगवान् का निवास है और दत्ता त्रेय जी हैं वह तुमको प्रहलाद की भान्ति प्यार से चाटेंगे और केवल स्वरूप का ज्ञान दत्तात्रेय जी देंगे। ऐसा निश्चय रखने से तुम्हारे दोनों हाथों में लड्डू हैं।

"सर्वाऽहमस्मीति उपासीत तद्व्रतम्"

अब रह गई यह बात कि:- "पुण्येन पुण्यं लोकं नयति, पापेन पापं उभयम्यां मनुष्य लोकम्।" कहते हैं कि जब मनुष्य के पाप कर्म अधिक होते हैं और पुण्य कर्म न्यून तो पश्वादि योनि को जीव प्राप्त होता है और पाप न्यून और पुण्य अधिक होने से देव योनियों को पाता है। और पाप पुण्य दोनों बराबर होने पर मनुष्य योनि को प्राप्त होता है परन्तु वास्तव में यह नहीं है। जीव आता है जाता है घटि यन्त्र की तरह और तेली के बैल की भान्ति चक्कर लगाता हुवा मनुष्य शरीर को परमात्मा की दया से प्राप्त करता है। यह कर्म योनि है और शेष सब भोग योनि हैं। यदि मनुष्य योनि में जीवात्मा शुभाशुभ कर्म करके देवतादिक और पश्वादिक भोग योनियों को प्राप्त करे तो वह मनुष्य योनि से कम होनी चाहियें। पर ऐसा नहीं है, एक ग्राम की चींटी और मच्छरों को यदि संख्या करें तो सारी पृथिवी के मनुष्य भी उनके बराबर नहीं हो सकेंगे।

प्रश्न= तो हम कैसे माने ?

उत्तर— इस सृष्टि से पहले परमात्मा ही था और अन्त में वही रहेगा। वर्तमान में जो जो दीखता है वह भी वही है।

"आदावन्ते यन्नास्ति" जो जगत् आदि अन्त में नहीं है वह वर्तमान में भी असत्य है। सत्य केवल परमात्मा है, वही राम है।

'राम नाम सत्य है सत्य बोलो गत्य है"

यह जो मुरदे के पीछे जाते हुवे कहा करते हो वह जीते जी कहो और समझो।

'सदेव सोम्येदमग्रेसीदेकमेवाद्वितीयम्'

हे सौम्य ! सृष्टि से पूर्व एक परमात्मा ही अद्वितीय सत् था। उसने क्यों और किसके लिये सृष्टि उत्पन्न की यह नहीं जानते। परन्तु सृष्टि की उत्पत्ति होना एक गिरावट है। परमात्मा से प्रकृति उत्पन्न हुई, प्रकृति से महतत्व, महतत्व से अहंकार, अहंकार से आकाश, आकाश से वायु वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जलों से पृथिवी, पृथिवी से बीज, और उनसे ओषधि वनस्पति यहाँ तक गिरावट हुई, यहां से फिर उन्नति आरम्भ होकर अन्त में परमात्मा में लय होने के लिये उन्नति आरम्भ हुई। पहले वृक्षों के शिर, और गर्भ में बच्चों का शिर नीचे को होता है और पैर ऊपर को होते हैं और एकेंद्रिय ज्ञान होता है। वृक्षों से पशुओं की योनि उन्नत होती है उनका शिर सीधा आगे को होता है। और तिर्यग् सर्पादि से गौ अश्वादि की सृष्टि उन्नत है। गौ, सर्प, मच्छी, बन्दर, शूकर, हाथी इत्यादि योनियों से जीव उन्नति करता हुवा मनुष्य शरीर को प्राप्त हुवा। और उन मनुष्यों में विशेषतः ऐसे स्वभाव प्रकृति आई है। बहुतेरे मनुष्य काले सांप और भोटे की भान्ति क्रोधी होते हैं। वह अपने उपकार करने वाले का प्राण लेने से भी तृप्त नहीं होते। बहुतेरे गौ जैसे शान्त स्वभाव

वाले होते हैं। मनुष्य शरीर जब इन योनियों से बने तब गणेश जैसे और और देवताओं की आकृति वाले बन्दर, मच्छी और वासुकी नाग इनकी थोड़ी प्रकृति इनमें मिलती थी और मनुष्य की प्रकृति इनमें अधिक थी। अब बनते बनते मनुष्य ठीक बन गया है, सीधा खड़ा हो गया है, अब इसका तीसरा नेत्र खुलेगा और वह इससे ऊपर को देखेगा और सूक्ष्म अवस्था में चला जायेगा। भूलोक से भुवर्लोक को, भुवर्लोक से स्वर्गलोक को, स्वर्गलोक से महर्लोक को, उससे जन लोक को उससे तपलोक को और तपलोक से सत्यलोक को प्राप्त हो जावेगा। सत्यलोक से, ब्रह्मा, ब्रह्मा से विष्णु विष्णु से महादेव और महादेव से निराकार ज्योति स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जायेगा। यह उन्नति की हद है।

"सा काष्ठा सा परागतिः।"

अब परमात्मा को प्राप्त होने के लिये यत्न करना चाहिये, सत्य मार्ग पर दृष्टि रहनी चाहिये, जीवन के रुख को ईश्वर की तरफ झुकाना चाहिये परमेश्वर के नाम जपने वाले, कीर्तन करने वाले, उसकी महिमा को जानने वाले, सत् मार्ग को बतलाने वाले, भ्रम ज्ञात को हटाने वाले, जिनकी वाणी के द्वारा अज्ञान ऐसे मिट जाता है जैसे सूर्य की किरणों के द्वारा अन्धकार। ऐसे साधु, महात्मा और भले पुरुष इनका संग जो सत्संग कहलाता है करो। सत् परमेश्वर है उसका संग 'अहं ब्रह्माऽस्मि' 'तत्व मसि' वाक्यों के अनुसार जैसे तुम देह, प्राण, इन्द्रयें, मन, बुद्धि को अपना आपा ख्याल करते रहे हो, मानते रहे हो वैसे ही अजर, अमर, निरञ्जन, निराकार, ज्योति-

स्वरूप परमात्मा को अपना आपा मानो, ख्याल करो। ऐसा जो ब्रह्मात्मा का एकत्व रूप ज्ञान है उस ज्ञान के उदय होने में जिस कर्म के द्वारा सहायता मिले वही कर्म अच्छा है। फूल वह ही अच्छा है जो ठाकुर जो पर चढाया गया है उस फूल की अपेक्षा जो बिखर कर धूल में मिल गया है। कर्म वही अच्छा है जो परमात्मा के लिये हो। वही पुत्र, धन, कलत्र, इष्ट मित्र, जो भगवान् की भक्ति के लिये हों अच्छे हैं। वही जीवन अच्छा है जिसमें भगवान् के गुण, कीर्तन, नामों द्वारा किये जांय, सत्संग हो, ज्ञान हो, आत्मा अजर अमर और निष्पाप, निरंजन, निर्विकार, ज्योति स्वरूप हो जाय। परमात्मा को अनन्तवार हमारी नमस्कार हो और धन्यवाद हो।

'ओं अदाम ओं पिवाम:'

'ओंकारेवेदं सर्वम्' 'आत्मेववेदं सर्व' 'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण अधश्चोर्ध्वं प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।'

अहा हा! सब कुछ यह परमात्मा ही है। आगे, पीछे, दायें, बायें, ऊपर नीचे आकाश की तरह परमात्मा ही छाया हुवा है।

कर्म सत्यानृते चोभे त्वमेवास्ति नास्ति च।

बुरे भले कर्म भ्रम के सिवाय कुछ नहीं। सत्य, असत्य, द्वैत, अद्वैत, अन्धकार, धूप, शुभाशुभा सापेक्षिक शब्द हैं। मनुष्यों के कर्म एक मत की अपेक्षा से दूसरे मत के कर्म शुभाशुभ कहलाते हैं। जैसे वैष्णवों का स्नान करना, तिलक लगाना स्वर्ग को ले जाता है वैसे ही जैनियों का नहाना, मुंह धोना, तिलक लगाना विपरीत है।

"मुंह धोवे रोजी खोवे न्हाय नरक को जाय"

स्मृतियों में लिखा है :-

एकाहमपि कर्तव्य भूमिश्मुदकं शुभम् ।
कुलानि तारयेत् सप्त यत्र गो वितृषिर्भवेत् ।।

तालाब, पोखर बनाने का, खोदने का इतना माहात्म्य है कि इतना गढ़ा भी भूमि में खोद देना कि जिसमें इतना पानी भर जाय जितने में एक गाय को प्यास बुझ जाय उसका इतना पुण्य होता है कि अपने सात कुलों को संसार से तिराकर स्वर्ग को ले जाता है। जनियों का इससे विपरीत है। इसी तरह से मुसलमान खुदा के नाम पर गौ का बलिदान पुण्य और हिन्दू, बुद्ध, जैन अपुण्य मानते हैं। हिन्दू कहते हैं इन्द्रियों का नाम गौ है, इन को वश में करो और परमात्मा के मार्ग पर चलाओ यह गो बलि करो। इसी तरह से मुर्दे का जलाना, गाड़ना, पींजरे में रखना और जंगल में फेंकना इत्यादि अच्छा बुरा मानते हैं। मरने के बाद जीव का क्या होता है। यथा कर्म यथा श्रुतं के अनुसार जीव अपने ख्याल से भिन्न २ प्रकार की गतियों को प्राप्त होता है जो वास्तव में नहीं है। एक संस्कृत का लिखा पढ़ा पण्डित जब मरगया और कुछ देर के पीछे जिन्दा हो गया उससे पूछा कि तैंने क्या देखा तो कहा 'कि मुझे दो यम के दूत यमपुर ले गये। वहां यमराज एक बड़े सुन्दर सिहासन पर बैठा हुवा था, उनके माथे पर श्वेत चन्दन था, गले में श्वेत पुष्पों की माला थी, लाल कुर्ती थी और पौण्ड्रक भैंसा थोड़े फासले से खड़ा हुवा था। उन्होंने वही देख कर कहा कि इसका हुकम अभी नहीं है इसे नीचे

डाल दो। मैं नीचे डाल दिया गया और जैसे स्वप्न में कूवे में या तालाब में गिरते हुये भय होता है और फिर गिरते हुवे धरती या जल में पहुंचते ही निद्रा आ जाती है ऐसे ही नींद आ गई जब वह खुला और होश आया तब सबने कहा कि जिन्दा हो गया। मैंने मर कर यह देखा।' एक मुसलमान एक बार मर गया उसने कहा 'मुझे दो आदमी पकड़ कर कबरों में ले गये। उनमें छोटी छोटी कोठड़ी और कमरे भी थे। उसमें एक हाकिम बैठा हुवा था और वहां के रहने वाले पुण्यात्माओं को अच्छा भोजन और अच्छी जगह थी। दूसरों के हाथ में काले पर्चे थे। जिनको यहां काजी मौलवी और बहुत अच्छे आदमी समझते थे वहां उनको छोटी छोटी कोठड़ी, चार २ रोटी, बदना, बोरिया मिले हुवे थे और जो सीधे साधे थे, मजहब का पक्ष, नमाज, रोजा कुछ नहीं जानते थे जिनको यहां बुरा कर्म करने वाला कहते थे उनको अच्छे कमरे और अच्छा खाना, आराम के साथ रहना मिलता था। वहां पर मुझे खड़ा किया। कबरों के अफसर ने कहा कि इसका हुकम नहीं है इसे ले जाओ। इस तरह से मैं मर गया था फिर मुझे होश आ गया। मेरी स्त्री ने समझा था कि वह सो गया है। तब मुझे पूछा क्या हाल है, मैंने सब वृत्तान्त कह सुनाया ' ऐसे ही मरने के समय मरने से कुछ पहले जैसी सवारी वाहन आदिक सुने हैं वैसे ही ख्याल से दीखने लग जाते हैं जो यह समझता है कि मैंने पाप किये हैं उनके लिए भैंस, ऊँट, लढ़ा, बहली आदि घटियल सवारी लेकर यम के दूत आते हैं और पुण्य कर्म करने वाले के लिये रथ, पालकी, पिन्नस विमान पार्षद लेकर आते हैं। अब एक मनुष्य

प्लेग में मरने लगा तो उसे पार्षद मोटर लेकर आये और कहा कि मोटर में बैठले और चल। ऐसे देखने वाले प्रायः जीते नहीं हैं। इससे सिद्ध है कि मनुष्य ने जो कुछ कर्म किया है और उसके विषय में जसा सुना है वह अपने संकल्प से आप ही दीखने लग जाता है वास्तव में कुछ नहीं है जैसे वायु की बीमारियों में, स्वप्न में इन्द्रियों के विकृत होने पर झूठी शकल सूरत, लोक परलोक भासने लग जाता है। और जब मनुष्य को यह निश्चय हो जाता है कि एक परमात्मा पूर्ण ब्रह्म ज्योति स्वरूप, निराकार, निर्विकार, शान्तात्मा अपना सर्वस्व है और मैं अपने उसी स्वरूप को प्राप्त हुंगा, उसी से आया हूँ, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है वह परमात्मा को ही प्राप्त हो जाता है। यह जीव परमात्मा से बिछुड़ कर माता पिता के गर्भाशय में होता हुवा बाहर आता है। माता पिता के कर्मों को भोगता है और माता पिता सन्तान के कर्मों को भोगते हुवे मनुष्य लोक में रह कर क्रमशः परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं और कुछ भी झगड़ा नहीं है। उपनिषदों में कहा है कि यह जीव जन्म धारण करता हुवा शरीर को प्राप्त होता हुवा सारी बुराइयों से युक्त हो जाता है। मरता हुवा शरीर को छोड़ता हुवा सारी बुराइयों से मुक्त हो जाता है।

"एतेभ्यो भूतेभ्यो समुत्थाय तान्नेवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञा अस्ति इत्यहोवाच याज्ञवल्क्य ।।"

याज्ञवल्क्य ने कहा यह जीवात्मा इन भूतों के साथ प्रकट होता है और भूतों के पृथक् होने पर परमात्मा में मिल जाता है। मैत्रेयी ने कहा "आप मुझे मोह में डालते हैं जो कहते हैं कि मर करके

दूसरा जन्म नहीं होता। उन्होंने कहा कि मोह से या मोह में डालने वाली बात नहीं कहता हूँ। यह आत्मा अविनाशी है, मर करके इसी को प्राप्त होता है, समझदार के लिये इतना ही उपदेश पर्याप्त है। ऋषियों से कहा:—

'जात एव न जायते कोन्वेनं जनयेत् पुनः विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।'

पैदा हुवा यह मर करके फिर पैदा नहीं होता। अपने स्वरूप विज्ञान और आनन्द में लय हो जाता है। मरते समय स्थूल शरीर पृथिवी में, प्राण वायु में, अग्नि अग्नि में। आकाश आकाश में, इन्द्रियें अपने देवताओं में, घ्राण पृथिवी में, नेत्र सूर्य में, मन चन्द्रमा में, अहंकार रुद्र में इत्यादि देवता अपने देवताओं में मिल कर अमर हो जाते हैं। ऐसे ही आत्मा परमात्मा में मिल कर अमर हो जाता है। यही बात माण्डिल्य ने छान्दोग्य उपनिषद् में कही है। रह गये पाप पुण्य वह ज्ञानी के ब्रह्मात्मैक्य रूप ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं। अज्ञानियों को 'यथा कर्म या श्रुतं' के अनुसार सूक्ष्म शरीर में भोग लिये जाते हैं। इसलिये सब मनुष्यों को जानना चाहिये कि हम परमेश्वर से आये हैं और परमात्मा को ही प्राप्त होंगे। सब कुछ आत्मा ही आत्मा है। वही परमात्मा है और सब कुछ भ्रम है। इससे आत्मा का कुछ बनता बिगड़ता नहीं है। इसलिये परमात्मा की भक्ति करो, परोपकार जो कुछ हो सके परमात्मा की प्राप्ति के लिए करो। पैरों से तीर्थ व महात्माओं के दर्शन करने के लिए चलो वहां से तुमको यथार्थ ज्ञान होगा, हाथों से श्रेष्ठ पुरुषों को पूज्य दृष्टि से, दुःखी दोनों को दया दृष्टि से दान करो परमात्मा के नाम पर। वाणी से उसके गुण, उसका नाम यह

सच्चा उपदेश करो। मन से निश्चय पूर्वक उसी को मानो और उसी एक की पूजा करो। चित्त से बार बार उसके स्वरूप का चिन्तन करो। बुद्धि से उसी का निश्चय करो। अहंकार से वह परमात्मा मैं ही हूँ। ज्योति स्वरूप, निराकार, निर्विकार, निष्क्रिय, निर्गुण, मन इन्द्रियों से अगम्य, जगत् निषेदावधिभूत, नेति नेति करके कहा हुवा वह वास्तव में मेरा ही स्वरूप है। आंखों से जो कुछ दीखता है, मन से जो मनन किया जाता है, कानों से जो सुना जाता है, बुद्धि से जो निश्चय किया जाता है, त्वचा से जो स्पर्श किया जाता है, जिह्वा से जो रस लिया जाता है, घ्राण जो गन्ध ली जाती है वह सब का सब परमात्मा अपना ही आत्मा है। इस ज्ञान से जो बड़े से बड़ा मोक्षधाम है उसको तुम स्वयं प्राप्त हो जावोगे। जो कुछ तुम इस मनुष्य जन्म में सिद्धि और करामात या जो कुछ चाहते रहते हो सूक्ष्म शरीर में स्वतः सिद्धि प्राप्त हो जायेगी। तुम मर कर देवता बनोगे, गन्धर्व बनोगे। यदि तुम्हारा निश्चय डांवाडोल होगा तो भूत, प्रेत और पितर बन जाओगे। इन सब को अष्ट प्रकार की सिद्धि और नव निधि प्राप्त हैं। तुम ऊपर ही ऊपर को सूक्ष्म से सूक्ष्म उन्नति करते जाओगे नीचे को कभी न गिरोगे। जिसके लिए यह सृष्टि रची गई। देवता, नर, पितर सब ने जिसके देखने के लिए यत्न किया, सब माताओं ने उदर में इसको धारण कर कष्ट उठाये, सारे के सारे काम, मनोरथ सफल हुवे। सब मनुष्यों को मरने पर खुशी और उत्सव मनाना चाहिये। रोना, धोना, रंज फिकर नहीं करना चाहिये। जब गंगा जी ने अपने सातों पुत्रों को गंगा में डुबा कर मार दिया तब राजा शान्तनु ने बड़ा

दुःख मान कर अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ते हुवे कहा तू इनको क्यों मार देती है ? तुझे दया नहीं आती ? तब गंगा जी ने कहा कि मैंने इनको स्वर्ग को पहुँचा दिया है। इस संसार में ऐसी उलटी रिवाज है कि जब किसी का सम्बन्धी कारागार में बद्ध हो तब तो खुशी और उत्सव मनाते हैं, साथिया काढ़ते और ढोल बजाते हैं। दान पुण्य करते हैं इत्यादि आनन्द मनाते हैं और जब कारागार से मुक्त होकर उत्तम पद और स्थान को अर्थात् अपने घर को आते हैं तब रोते, चिल्लाते और शोक मनाते हैं। नहीं तो यह समय आनन्द मनाने का है वह रंज मनाने का है। संसार की उल्टी रीति है। इसको देख कर कबीर महात्मा भी रो पड़ा।

चलती को गाड़ी कहैं तत्व माल को खोवा ।
उलटी रीति संसार की देख कबीरा रोवा ॥

कबीर वह दोहा फिर कहते हैं:—

जो मरने से जग डरे मोय बड़ो आनन्द ।
कब मरहुँ कब पाय हों पूरण परमानन्द ॥

जब मनुष्य बहुत जोर से भगते भगते थक जाता है तो उसको धीरे चलने में आनन्द आता है, उससे अधिक बठ जाने में, उससे अधिक सोने ने और उससे ज्यादा बेहोशी (मरने) में। एक आदमी जब मरने लगा तब उसने कहा कि जब मनुष्य मरने लगता है तो सो बिच्छू काटने का दुःख होता है यह बात अब नितान्त झूठी निकली। अब मैं मरने को हो रहा हूं अब मेरे श्वास नाभि पर न जाकर ऊपर से ही लौट आते हैं और मैं एक बेहोशी शून्य में मानो समाता जैसा हूँ

और बड़ी शान्ति, शीतलता और आनन्द का अनुभव करता हूँ। मरते हुवे पुरुष की वाणी मन में लय हो जाती है और मन परमात्मा में लय हो जाता है। मृत्यु क्या है अजर अमर होना है। ओं ओं ओं कह कर सृष्टि उत्पन्न हुई। सोऽहं सोऽहं कह कर उसी में लीन हो गई। हम न तुम तो दफ्तर ही गुम। एक आनन्द ही आनन्द स्वरूप परमात्मा है।

"आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयान्ति अभिसंविशान्ति॥"

आनन्द से ही सब की उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति हो कर सब आनन्द से ही जीते हैं। मरते हुवे आनन्द को ही प्राप्त होकर उसमें लय हो जाते हैं। तुम जानते ही हो माता पिता को एक साथ जब आनन्द आता है तब ही जीव की उत्पत्ति होती है। आनन्द के सहारे ही आनन्द की आशा पर प्राणी जीता रहता है अन्त को आनन्द में ही लीन हो जाता है। यही ब्रह्म है ऐसा जान।

'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति"

ब्रह्म के जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है।

'न तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।'

जिसकी कामना सब पूरी हो गई हैं, जिसकी केवल ब्रह्म ही की कामना है उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते। वह यहां ही ब्रह्म होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

यः आत्मा अपहत पाप्मा विजरो विमृत्यु विशोको विजिघत्सो पिपासः सत्य कामः सत्यं संकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः सविजिज्ञासितव्यः।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां, मनामहे चारु देवस्य नाम।

कोनो मह्या दितयो पुनर्दात पितरं च दृश्येयं मातरं च ॥

हम किसका नाम पवित्र जानें, कौन हमको माता पिता का मुख दिखलाता है।

अग्नेर्वय प्रथमस्यामृतानां, मनामहे चारु देवस्य नाम।

हम अग्नि परमात्मा का नाम पवित्र जानें। जो हमको आनन्द से पृथिवी में माता पिता का दर्शन कराता है।

ऋग्वेद के 'इस मन्त्र में यज्ञ रूप से बन्धे हुवे रोहित की प्रार्थना अथवा पुनर्जन्म का वृत्तान्त है। लड़के की जन्मते स्तन पान करने में तुरन्त ही प्रवृत्ति होना और तीव्र स्मृति होना और मृत्यु का भय होना इस बात को सिद्ध करते हैं कि पूर्व जन्म में उसे खाने पीने का अभ्यास रहा है, मरने का अनुभव किया हुवा है। इसी कारण से शेर को देखते ही गौ घबड़ा जाती है, बिल्ली को देखते ही छोटी चूही भगती है। यह मृत्यु का भय देख देख के नहीं बैठता स्वाभाविक ही बैठता है।

जैसे किसी पशु को किसी मकान में मार पीट द्वारा दो चार दिन दुःख देकर उसे मुक्त किया गया हो और फिर बहुत पशुओं के साथ में मिला कर उसे उस मकान में पुनः लाया जावे तो और सब तो पशु सानन्द उस मकान मे प्रवेश कर जांयगे पर वह पशु जिसमें उसने दुःख अनुभव किया है नहीं प्रवेश करेगा। इससे सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य जो मौत से डरता है वह पहले भी मर चुका है और मौत के दुःख को अनुभव कर चुका है। योग्य भाष्य में जैगीसव्य मुनि को अपने दस महा कल्पों के जन्मों का ज्ञान हुवा। अकाट्य भगवान्

ने पूछा कि तैंने इनमें क्या अनुभव किया ? उसने उत्तर दिया कि दुःख ही अनुभव किया। ऐसे ही बहुत से ऋषियों ने अपने दूसरे जन्मों का वृत्तान्त कहा। अभी भी ऐसे बहुत से मनुष्य उत्पन्न होते हैं जिन्होंने अपने दूसरे जन्मों के वृत्तान्त और निशान बताये। यूनान के फीसा गोरस ने अपने चेलों को कहा कि मैं पहले जन्म में सिपाही था। अमुक पर्वत की कन्दरा में मेरे हथियार रक्खे हैं। देखा तो उसी प्रकार वहां ही मिले। और भी कई बातें बतलाई। मौलाना रूम ने कहा मैंने कई जन्म धारण किये।

—:o:—

आश्रम का प्रबन्ध

आश्रम का सब काम श्री महाराज जी की देख रेख में चलता था। विधान आदि कुछ नहीं था। सन् 1935 में श्री महाराज जी के ब्रह्मीभूत हो जाने के बाद राव साहब ने कहा कि आश्रम को रजिस्टर्ड करा लेना चाहिये। तदनुसार श्री प्रेमनाथ ठुकराल की सहायता से एक विधान सन् 1941 में बनाया गया तथा उसे रजिस्टर्ड कराया गया। राव साहब प्रैजीडैण्ट थे और भूमानन्द ब्रह्मचारी सैक्रेटरी। सन् 1941 में ही राव साहब स्वर्ग लोक सिधार गये। उनके बाद मुंशी जी और म० रामानन्द जी भी कुछ समय बाद समा गये। सब काम रानी निहालकौर के कन्धे पर आ पड़ा। उन्होंने एक सुयोग्य लड़का जिनका नाम बीरेन्द्रसिंह है गोद लिया। राव बीरेन्द्रसिंह के आते ही राव साहब ने जो डालियाकी गांव ट्रस्ट कन्या पाठशाला के नाम कराया था उसमें सब मजारे सिर उकासने लगे और उन्होंने

समझा कि यह जमीन अब हमारे कब्जे में हो जायेगी। क्योंकि कांग्रेस ने ऐसा ही आश्वासन दे रखा था. उन लोगों ने हजारों वृक्ष काट लिये। इस प्रकार बहुत अराजकता फैला दी। राव बीरेन्द्रसिंह ने बखूबी सब काम सम्भाला और उन सबको उचित दण्ड जैसे जुर्माना आदि किया। अब तक यह गांव आश्रम के कब्जे में है। इसी प्रकार खेटावास वाली जमीन भी जो राव साहब ने आश्रम के लिये ली थी वह सब भी मजारों ने कब्जा ली थी। वह सारी जमीन छुड़ाकर अब उसमें आश्रम ने ट्यूबवैल लगवा दिया है। आश्रम की चहुँमुखी उन्नति के लिए राव बीरेन्द्रसिंह ने लाखों रुपया सरकार से लेकर तथा स्वयं जब वे मन्त्री थे तब डिसक्रेशनरी फण्ड से देकर स्टेडियम में, हाई स्कूल भवन में, दो बड़े बड़े छात्रावासों तथा औषधालय में खर्च किये।

आश्रम के प्रबन्ध के लिये भी ट्रस्ट के अतिरिक्त एक प्रबन्धक कमेटी बनाई गई जिसमें रानी निहालकौर, बाई सुमित्रादेवी M.L.A. कुमारी सूरजदेवी और राव साहब प्रेजीडैण्ट तथा भूमानन्द सक्रेटरी हैं। आश्रम में एक लड़कियों का हाई स्कूल तथा कन्डेम्डकोर्स, औषधालय, गऊशाला, कृषि विभाग, वृक्ष विभाग आदि संस्थाएँ हैं। आश्रम में सन् 1954-55 से जूनियर बेसिक ट्रेनिंग भी दी जाती थी। मगर अब हरियाणा सरकार ने बन्द कर दी है। अतः अब यहां भी बन्द हो गई है।

आज भी आश्रम राव बीरेन्द्रसिंह जी की देख रेख में चहुँमुखी उन्नति कर रहा है और भारत का एक दर्शनीय व आदर्श स्थल

बना हुआ है। जिसे देखने के लिये लोग दूर दूर सेआते हैं और श्री महाराज जो दर्शन करके जीवन सफल बनाते हैं। सावन बदी पंचमी को हर वर्ष एक उत्सव श्री महाराज जो की वर्षी के रूप में मनाया जाता है। इस दिन लोग आश्रम आकर श्री महाराज जी के चरणों में श्रद्धा के फूल चढ़ाते हैं। मेरे भी श्रद्धा के तुच्छ सुमन श्री महाराज जी के चरणों में समर्पित हो।

भूमानन्द

महाराज जी के सूरजदेवी के नाम लिखे गये कुछ पत्र

ईश्वर साक्षी है, आपकी आज्ञा कभी न टालूंगी, आज्ञा तीन बात की है। १. पाठ पूजन भजन ध्यान करना। २. सदाचार से पवित्र जीवन व्यतीत करना। ३. परमात्मा पर पूरा भरोसा रखना वह अपना सहायक है।

सब दोहे व अच्छे २ भजन लिखना सुधार कर तुम सरस्वति साक्षात हो भजन जो कहोगी पाछे भेज देंगे। राव सहाब अभी लाहौर से नहीं आये हैं ओ३म् ओं ॐ।

× × ×

एकदा पार्वती महादेव को विजया पिलाकर और उनका प्रसन्न मुख देख पूछने लगी महाराज संसार सागर से शीघ्रोद्धार का साधन कहिये हर बोले भक्ति ही मुख्य साधन है।

यस्य देवे परा परां भक्ति यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

× × ×

ओं तत्सत पर ब्रह्म परमात्मने नमः दे० सू० कृष्णादि दुर्गा पर्य्यन्त नारायण हरि आप प्रातः काल उठ पिछला पाठ स्मरण कर पिता माता के चरणों में वन्दना करना उनकी आज्ञानुकूल जीवन बिताना पिता तुम्हारे परम भक्त हैं जो कुछ कहें सोई करना आप अपने पिता की परम भक्त हो जो घीसा की बात हमको भी नहीं इस पर प्रसन्नता हुई वह कहने से बाहर है धर्म पर पक्की रहो यह करके दिखलाने की बात है इसका कहा ही अब क्या है पिता को गुरू मानो माता को हमारा केवल यही कहना है कि पढ़ते रहना चाहिये हम जो कह चुके हैं वह हित के लिये सच्चा है।

× × ×

परमात्मा अपने भक्तों की परीक्षा लेते हैं आप न घबड़ाइये धीरज रखिये।

× × ×

आपको हठी दुनियां से प्रम हटा कर परमात्मा में चाहिये। परमात्मा का पूरा भरोसा रक्खो वह असहायकों का सहायक अपना सर्वस्व है यही निश्चय रक्खो।

× × ×

ओं परमात्मा पर पूरा भरोसा रखो ईश्वर स्मरण व मन्त्र जपते रहो आगे स्याम दास आदि आवेंगे देखें सच्चाई का परिचय कैसे देती हो संस्कृत में पत्र लिखा करो चाहे कितनी हो देर लगे शब्द ढूंढने में।

× × ×

संस्कृत शब्द चुन कर पत्र लिखना प्रसन्न रहना परीक्षा की प्रतीक्षा रखना आपने कहा कि पूछ कर लिखूं कि बिना पूछे सो जैसा

आपके जी में आवे वा जैसा अवसर देखो वैसे लिख देना धर्म पर अटल रहना, पढते रहना विशेष संस्कृत में थोड़ा भाषा में।

× × ×

श्री गणेशाय नमः सिद्धं आपने जो लिखा है कि आप किस से प्रसन्न होवोगे सो तो प्रसन्न हैं जिससे धर्म ईश्वर भक्ति बढ़े उसी से प्रसन्न हैं रोज भजन किया करना माता पिता का भक्ति करना सत्य बोलना शुद्ध पवित्र नेक चाल चलन रखना पुरुष लड़कियों के विषय में जो शंका करते हैं। उस लांछन को दूर करना बहुत पवित्र चाल चलन रखना तुम्हें देख २ कर और लड़के लड़कियां ईश्वर भक्त बन जावें सोई काम करना।

× × ×

भगवान् की भक्ति करो और सन्तानों को उत्तम योग्य धर्मात्मा बनाओ निष्काम कर्म करो मान बड़ाई तथा पूजा की इच्छा मत करो लोगों के साथ अच्छा वर्ताव रक्खो किसी पर किसी प्रकार का दबाव डालना पाप है तुम तो सब के साथ अच्छा करो मेरा अपना विश्वास है जो वस्तु पूर्ण रूप से त्याग दी जाती है वह स्वतः प्राप्त हो जाती है सो मान बड़ाई के ख्याल को त्याग परमात्मा की भक्ति करो।

× × ×

धर्म कभी न छोड़ो सत्य से कभी मत डिगो किसी को आत्मा मत दुखाओ किसी को जोरा जोरी कर किसी काम में मत लगाओ। प्रह्लाद पर कैसे कष्ट आये हरिश्चन्द्र कैसे सताये हकीकत कत्ल हुवे सिक्खों को जिन्दे भोत में चिना मारा बाई कर्मादि ने कैसे कष्ट सहे पर धर्म न छोड़ा एक बार जो पकड़ कर छोड़ना नहीं जानता है वह अवश्य सब दुखों से मुक्त हो जाता है। धर्म के धारण में पहले तो कष्ट आते हैं। पीछे धर्मात्मा की दृढ़ता रूपी पताका इतिहास में गाई जाती हैं। सदैव के लिये अत्यन्त शान्त हो "जब तक सोना कसिये नाहीं होत न बारा बानी"।

—:×:—

महाराज जी के भूमानन्द के द्वारा लिखे गये कुछ पत्र

परमात्मा बड़े दयालु हैं उनकी कृपा से यहां आ गये हैं। नवल को एकाध रोज बुखार हो गया अब अच्छे हैं। हम प्यारेलाल से और हरिओं से कह आये थे शकर के पास सब मिल करके श्लोक कह लेना, सत्सग कर लिया करना. हरिओं को भी वृक्षों में पानी डालना है परोपकार से बड़ा प्रेम है, प्यारेलाल ने भी उस रोज रात्रि में पानी डाला। इसलिए हरिराम, रामस्वरूप सब मिलकर थोड़े बहुत श्लोक गीता के कहें और रात बिरात वृक्षों का ख्याल रखना यह शंकर को चाहिए सबको बुला कर प्रेम से बात करलें। रात्रि को वृक्षों को एकाध दफा देख लें।

× × ×

भगवान् जो कुछ करता है भले के लिये करता है। इनको संस्कृत पढ़ना चाहिये। बिरजी की रूचि संस्कृत में दस्तकारी में सेवा, करने में, कविता करने में ज्यादा है इसी में और उन्नति करनी चाहिए।

× × ×

सब आश्रमवासी और आश्रमवासिनियों को परमेश्वर का खूब विश्वास रखना चाहिए। जो कुछ होता है भगवान् का किया होता है। और वह सबके भले के लिए होता है।

× × ×

सबको कहना सब राजी बाजी रहना, भगवान् का भजन करना और आश्रम का काम करना।

× × ×

यहां एक सत्संग सभा बनी है। केशव के और ग्यारू के भजन हो जाते हैं।

× × ×

संसार में जो कुछ होता है परमेश्वर का किया होता है और वह भले के लिये होता है, सबसे प्रेमपूर्वक अच्छा व्यवहार करते रहो।

× × ×

यहां कल इतवार को जाखू पर सत्संग सभा हुई बहुत बड़े २ आदमी बहुत संख्या में आये। शर्मा ने रिपोर्ट पढ़ कर सुनाई पदाधिकारी चुने गये। सभापति राव सहाब, उप सभापति राय साहिब, पं० चिन्तामणी। राय सहाब गयाप्रसाद, दयालीराम मन्त्री सदानन्द शर्मा इत्यादि। केशव और कृष्णचन्द्र के भजन हुवे। दो बंगाली और सनातन धर्म सभा की मण्डली का कीर्तन हुवा, प्रार्थना हुई, गायत्री मन्त्र का उपदेश हुवा, चार बार की संध्या का लोगों ने प्रण किया। तुम लोग भी इसी तरह प्रार्थना, स्वाध्याय और निष्काम कर्म करते रहना।

× × ×

ओं सर्वेश्वराय सर्वात्मने विश्वरूपाय नमो नमः। अत्र कुशलं तत्रास्तु। प्रिय शंकरदेव रामानन्द जो से कहना कि भवानीसिंह ने अपनी बहन को भेजने के लिये कहा, भूमानन्द ने कहा खर्च देना चाहिये उसने कहा खर्च तो मैं दे नहीं सकता सो वह रुपया दो रुपया ना देना चाहे तो भी उसकी बहन को दाखिल कर लेना चाहिये। रामानन्द या किसी के द्वारा भवानीसिंह को खबर कर देना चाहिये या सावित्री जाकर ले आवे रामानन्द और भवानीसिंह दोनों मिलकर गावों मे लड़कियों के पढाने का प्रचार करें तो बहुत अच्छा है। कोई जो खर्च दे सके जितना दे सके न दे सके तो अपने खर्चे से रख लेनी चाहिये। लड़के तो पढ़ते हैं लड़कियों की पढ़ाई का बड़ा अभाव है। राव साहब कहते हैं खर्च जो नहीं दे सके उसको हम पाठशाला से खर्च दे देगें। सावित्री को पलवल भेज देना चाहिये सोई तो जूनियर छिम्मो और द्रौपदी पास करके आवेंगी सोई सावित्री पास करके आयेगी, फिर वह पक्की अध्यापिका हो जायगी और फिर आगे और

आश्रम में पढ़ती रहेगी। इसलिये उसे जरूर पलवल भेजना चाहिये। धूमीसिंह को कहना चाहिये किसी बात का सोच न करे लोग तो बड़ी सिफारिश करा कर वहां भेजते हैं। ट्रेण्ड कराते हैं। उससे ३०) ४०) तो सब जगह तनखा मिल सकती है। और फिर वह आश्रम में आकर और पढ़ लेगी भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये कि खूब विद्वान् एम० ए० बी० ए० बने धार्मिक बने और मोह नहीं करना चाहिये। संस्कृत पढ़े खूब फिर पढ़ाने का काम करे। वह जल्दी ही आश्रम में पास करके साल भर में आ जावेगी। उसने पांच वर्ष में आठ जमात पास करली है रत्न कर ली है लड़की होनहार है, साथ में छिम्मी है कोई सोच फिकर की बात नहीं है। बृजी को खूब प्रेम से पाठशाला में पढानी चाहिये। मुन्शी जी के परिश्रम का फल है।

× × ×

सब मिल करके भगवान् से प्रार्थना करो और प्रयत्न करो कि बहुत लड़की पढ़ने वाली आ जांय। छोटी रामदेवी को भी लछमा दाखिल करादे ताकि अगले साल वह भी ट्रेण्ड होने को चली जावे। यह भी हुशियार लड़की है अपने जी को पढ़ने में लगावे और परीक्षा पास करे तो बहुत अच्छा होगा।

× × ×

सूरज ने लिखी थी कि रानी ने कहा है गोदावरी भी पाठशाला में आ जावे सो सूरज, गोदावरी, रानी तीनों पाठशाला का काम करें। गोदावरी को भी पाठशाला में चला जाना चाहिये।

× × ×

राव सहाब और सदानन्द स्काउट मास्टर इन्होंने यहां ही टेनिस का मैदान बना लिया है टेनिस खेलते हैं। सत्सग सभा होती है कीर्तन होता है।

× × ×

सबके सब भूले बिसरे स्त्री पुरुष भगवान् का विश्वास रक्खें कन्या पाठशाला को और सारे आश्रम को उन्नति की प्राथना करें।

× × ×

पं० प्यारेलाल पढ़ने पढ़ाने का और गीता पाठ का अभ्यास कराता होगा।

× ×

इस समय ९॥ बजे हैं मूसलाधार वर्षा हो रही है। शंकर, रामस्वरूप और रामनारायण को जहां रोस पट्ठियों पर नीम या वृक्ष नहीं लगे हैं वहां उखाड़ २ कर नीम सोहजने लगाय देने चाहियें। सब कनेर काट कर एक एक बिलान्द की खून्टी करके छोटी से छोटी दो पत्ते वाली भी गाड दोगे तो भी वह फूट आवेगी वर्षा में और जहां से काटोगे वहां जड़ छोड़ देना वहां भी फूट आवेगी।

× × ×

भक्त, भक्ता जी, गोदावरी, बाबूराम, बक्सानी, कौशल्या दुलारी आना चाहें और अपने रुपये का ज्यादा लोभ नहीं करें तो यहां कोठी बहुत अच्छी है। बहुत अच्छे कमरे हैं। ऐसा स्थान और ऐसे कमरे और कोठी किसी को नहीं मिले हैं।

× × ×

सब आश्रम में दत्त चित्त होकर वृक्ष लगाओ कहीं आने जाने को मन न भटकाओ। अपनी राजी खुशी का समाचार एक बार शीघ्र पहुंचाओ फिर हम आ जावेंगे। इतवार के दिन दयालीराम के स्थान पर सत्सग है। उसके बाद सोमवार को यहां से चलने का विचार किया है उसने रक्षा आदि सब बातों का प्रबन्ध किया है और बहुत २ करके प्रार्थना की है। यहां आनन्द और शान्ति का बडा अनुभव हो रहा है थोड़े आदमी और बढ जांय तो संकट हो जाय :

× × ×

ओं तत्सत् पर ब्रह्मणेनमः अत्र शं तत्रास्तु। यहां दिन रात वर्षा बरसै है, ठण्डक अधिक हो गई है। सम्भव है वहां भी कुछ वर्षा हो गई हो, अगर ज्यादा बरसा होने की सम्भावना है।

× × ×

और सब आनन्द हैं। बासुदेव आने वाला हो रहा हैं, पांच छः रोज में. अकेला नूनकरणदास आकर ले जाय, ६० मील का पहाड़ा दृश्य देख जाय। मोटर में बैठते ही नाना प्रकार के पहाड़, उनके ऊपर तरह २ के वृक्ष लहराय रहे है। हरी घास फूट रही है. नाना प्रकार की जड़ी बूंटी मंहक रही है, फूल खिल रहे हैं, झरना झरे हैं। पक्षी नाना प्रकार के शब्द कर रहे हैं, अपनी मीठी बोलियों के द्वारा मनुष्यों के मनों में हर्ष उत्पन्न कर रहें हैं, बादल पहाड़ों पर बैठे अति शोभा दे रहे हैं।

× × ×

शर्मा तुम्हार खाने पीने का इन्तजाम करता रहेगा। और सब मिलकर चन्दा आदि का भी काम, सत्संग का काम. मेम्बर भरती का काम चलता रहेगा। गर्मी २ के दो तीन महीना खूब ठहरना, दयाली राम भी आ गया है कभी कीर्तन कलीवाड़ो में कभी सनातन धर्मसभा में और कभी जाकू में होता रहेगा, सब, सब जगह जाते रहेंगे। नहीं तो राव सहाब के आने पर हम जल्दी ही चले आवेंगे। यहां सत्संग का काम बहुत अच्छा हो रहा है। शर्मा के डण्डी स्वामी, जाखू पर संस्कृत पढ़े लिखे वैष्णव आ रहे हैं। शर्मा के घर सारा रात बड़ा भारी सत्संग हुवा। तुम लोग भी सब बोजों को यथायोग्य बोते रहना।

—:×:—

❀ उपसंहार ❀

श्री महाराज जी ग्रीष्म ऋतु आने पर शिमले जाया करते थे। यद्यपि इस बार उनकी शिमले जाने की इच्छा कुछ कम थी। और उन्होंने जाने से पूर्व हंस कर फर्माया भी था कि "देखो रुपया का रुपया खोवें और साथ हो आदमी भी खोवें।" मगर उस समय इस पहेली को कोई भी नहीं समझ सका। वे सत्संग भवन से जिसमें कि वे रहा करते थे उस बार शिमले जाने के लिए चारपाई पर ही नीचे आये और सब को आज्ञा दी कि "बोलो राम नाम सत्य है" किसी भक्त ने उनसे पूछा भी कि महाराज जी कब पधारेंगे तो उत्तर दिया कि जिन्दा रहे तो आजावगे। शिमला पहुंचने पर उनको साधारण ज्वर हुवा उसी दिन से उन्होंने खाना पीना छोड़ दिया। औषधी से जब कोई लाभ न हुवा तो उपचार के वास्ते राव सहाब श्री महाराज जी को रिपन हस्पताल में ले गये। मगर वहां पर श्री महाराज जी ने रहना अनुकूल नहीं समझा और अगले ही दिन वे वहां से वापिस आ गये। समाधिस्थ होने से सात आठ दिन पूर्व उन्होंने 'सदाचार' नामक एक छोटी सी पुस्तक मेरे से लिखवाई। जिसमें उन्होंने मनुष्यों के कल्याण के वास्ते बहुत सुन्दर व सरल उपदेश लिखवाये। उन हा दिनों में श्री महाराज जी ने नीचे लिखे भजन बनाये और प्राय: इनको गाया करते थे:—

लहरा रही है ज्योति चिदानन्द की ॥
सब ब्रह्माण्डों के पृष्ठ भाग पर, सत्तास्फूर्ति सबको देरही है निजानन्दकी ॥
सारे विश्व के बाहर भीतर, हृदय कमल में सूर्य मण्डल में ।
जगमगा रही है ज्योति महानन्द की ॥
यह संसार असार है अन्तिम, एक ज्योति है अखण्डानन्द की ।
सूर्य चांद विद्युत और तारे, अग्नि ज्योति है भवानन्द की ॥

ज्योति बिना कछु और नहीं है, अहं ज्योति है ज्ञान यही है ।
अहं ब्रह्मास्मि ज्ञान की ज्योति, जग रही है घट घट परमानन्द की ॥

—:o:—

ममात्मा परमात्मा विश्वात्मा विश्वस्वरूप ।
ब्रह्मात्मा सर्वात्मा सूर्यात्मा ज्योतिस्वरूप ॥
अखण्डात्मा पूर्णात्मा ज्ञानात्मा ज्ञानस्वरूप ।
सुखात्मा चिदात्मा सदात्मा सत्यस्वरूप ॥
भावात्मा भवात्मा शून्यात्मा शून्यस्वरूप ।
ज्ञातात्मा ज्ञेयात्मा ध्येयात्मा ध्यानस्वरूप ॥

इन दोनों भजनों से स्पष्ट विदित होता है कि ज्यों ज्यों उनका समाधिस्थ होने का समय निकट आता था वे साक्षात् ब्रह्म में लीन होते जाते थे। कुछ दिन पूर्व उन्होंने आश्रम को एक पत्र लिखवाया कौन जानता था कि यह उनका अन्तिम उपदेश होगा। उसमें उन्होंने लिखवाया कि "भगवान् का भजन करो, प्रार्थना करो, धर्म पर दृढ़ रहो और कष्ट सहो। सब से ज्यादा वृक्षों से प्रेम करो।" दो दिन पहले उन्होंने त्याग का अवर्णनीय परिचय दिया। आश्रम के मुख्य २ शिष्यों में से कई एक उनके चरणों में उपस्थित होने पर भी उन्होंने दो दिन पूर्व ही उनसे बोलना या नाम लेकर बुलाना छोड़ दिया। जिस आश्रम के मनुष्यों की तो बात क्या है वृक्ष, लता, गुल्म, पशु पक्षियों को वे अपना स्वरूप समझ कर अत्यन्त प्रेम किया करते थे वह उस समय उनके लिए तनिक भी आकर्षण की वस्तु नहीं थी। और उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि वे शनैः शनैः शान्त भाव से

निज रूप में समा रहे हैं। उन्होंने दृढ़ भावना से वाणी को मन
न को प्राण में, प्राण को अपान में, अपान को उसकी क्रिया के
मृत्यु में, तथा मृत्यु को पञ्च भूतमय शरीर में लीन कर दिया।
कार शरीर को मृत्यु रूप अनुभव करके उन्होंने उसे त्रिगुण में
दिया, त्रिगुण को मूल प्रकृति में, मूल प्रकृति को आत्मा में,
आत्मा को आत्माओं के आत्मा अविनाशी ब्रह्म में विलीन कर
और ९ जुलाई सन् १९३६ को सायंकाल के आठ बजे अनाथों के
गरीबों के सहायक, ज्ञान की मूर्ति, परम सुख के दाता अपने
शरीर को स्वेच्छा से परित्याग कर शिमले के जाखू के टीले पर
पुर हाऊस में वे अपने निज रूप में समा गये। यद्यपि वे स्थूल
से अब यहां नहीं हैं मगर हमारी यह निश्चित धारणा है कि वे
अलौकिक दिव्य शक्ति द्वारा सर्वदा हमारे रक्षक और पथ
क रहेंगे।

सेवक—
भूमा

भक्ति प्रेस की पुस्तकें

—:×:o:×:—

१ सार संग्रह	—	—	ले० सूरज देवी
२ भक्ति चिन्तामणि	...	—	ले० भोले बाबा
३ शब्द सदाचार संग्रह	...	...	ले० भूमानन्द
४ भक्ति ज्ञानयोग संग्रह	...	...	,,
५ ज्ञान धर्मोपदेश	...	...	,,
६ मनुस्मृतिसार	...	...	,,
७ सदाचार	...	...	,,
८ श्री परमानन्दामृत	...	...	,,

—::o::—

मुद्रक:— भूमानन्द ब्रह्मचारी, "भक्ति प्रेस" रेवाड़ी ।